धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष—86 । अंक—3 । ₹—19 प्रति । ₹—220 वार्षिक
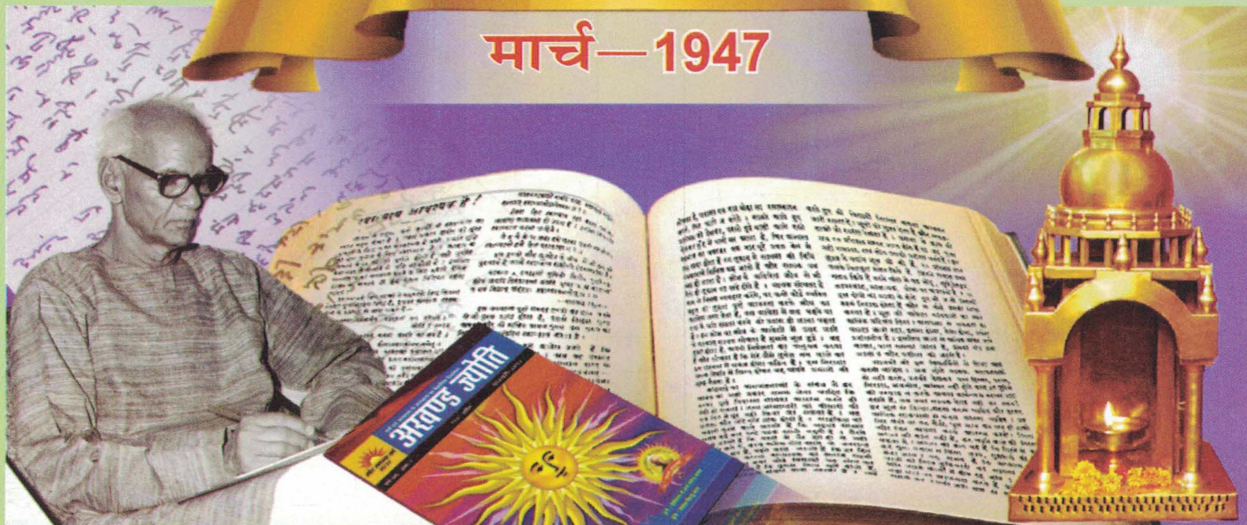
अपनी योग्यताओं का प्रमाण दीजिए।

" इस संसाररूपी समुद्र में असंख्य प्रकार के अत्यंत मूल्यवान महत्त्वपूर्ण रत्न इंच-इंच भूमि में प्रचुर परिमाण में भरे पड़े हैं। यह रत्नराशि परमात्मा ने इसलिए बिछा रखी है कि उनका राजकुमार-मनुष्य, उसके द्वारा अपनी श्री-वृद्धि करे। परंतु शर्त यह है कि जो उन्हें प्राप्त करने की योग्यता सिद्ध करे, उसे ही वे दिए जाएँ। जैसे छोटे बालक को या बुद्धिहीनों को बंदूक नहीं सौंपी जा सकती, वैसे ही अयोग्य व्यक्तियों को यह रत्नराशि उपलब्ध नहीं होती। नाबालिगों को राज्य दरबार में अप्रमाणिक माना जाता है, उन्हें वे अधिकार नहीं मिलते, जो एक साधारण नागरिक को मिलने चाहिए, किंतु जैसे ही वह नाबालिग अपनी आवश्यकता का प्रमाण प्रस्तुत कर देता है, वैसे ही उसे राज्य दरबार में प्रामाणिकता प्राप्त हो जाती है। मनुष्य की नाबालिगी उसकी लापरवाही और आलस्य है। जब तक सावधानी, जागरूकता और परिश्रमशीलता जाग्रत नहीं होती, तब तक वह नाबालिगी दूर नहीं होती और न तब तक संसार की बहुमूल्य संपदाएँ प्राप्त हो सकती हैं। किंतु जब अपनी उद्योगशीलता, परिश्रमप्रियता, जागरूकता प्रमाणित कर दी जाती है; तो परमात्मा द्वारा इस सृष्टि में पग-पग पर बिछाए हुए रत्नों की राशि हमें आसानी से प्राप्त होने लगती है। "

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य
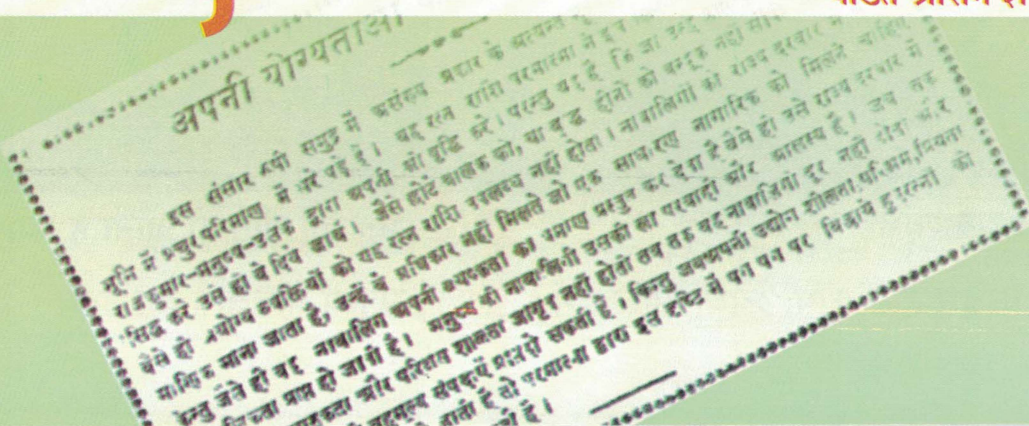
संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2402574
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर
एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 86
अंक	: 03
मार्च	: 2022
फाल्गुन-चैत्र	: 2078
प्रकाशन तिथि	: 01.02.2022

वार्षिक चंदा

भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में	: 5000/-

साधना

साधनात्मक प्रक्रियाओं के दो पक्ष हैं—ज्ञान पक्ष एवं विज्ञान पक्ष। दोनों मिलकर ही साधनात्मक प्रयोजनों को पूर्ण रूप प्रदान करते हैं। ज्ञान व विज्ञान, दोनों का समन्वित स्वरूप ही ज्ञानयोग एवं ध्यानयोग के रूप में निकल करके आता है। वस्तुतः सभी साधनात्मक प्रक्रियाओं का लक्ष्य तो एक ही है—अंतःकरण को जाग्रत करने वाली आस्थाओं का विकास, हमारी मान्यताओं का परिष्कार, प्रसुप्त क्षमताओं का जागरण एवं महामानव बनने की दिशा में चिंतन तथा क्रिया का सुनियोजन।

ऐसा करने हेतु सद्गुरु की आवश्यकता पड़ती है; क्योंकि उपरोक्त मार्गदर्शन करने के अतिरिक्त सद्गुरु अपनी पात्रता के अनुरूप शक्ति का एक अंश भी साधक को प्रदान करते हैं।

यह कहना उपयुक्त होगा कि साधना का अर्थ अपने चिंतन को इधर-उधर भटकने से रोककर एक उच्चस्तरीय प्रवाह के साथ जोड़ देने से है। इसी से एक दैवी चेतना से आदान-प्रदान संभव हो पाता है। सद्भावों का संवर्द्धन, श्रद्धा का अभिवर्द्धन—ये सब ही इन साधनात्मक प्रयोजनों को संभव बना पाते हैं। पात्रता का विकास, आत्मपरिष्कार, सद्गुरु से मार्गदर्शन की प्राप्ति, साधकों के जीवन का मुख्य लक्ष्य कहे जा सकते हैं। ❑

विषय सूची

आवरण पृष्ठ परिचय

होली के रंग चहुँओर

मार्च-अप्रैल, 2022 के पर्व-त्योहार

मंगलवार	01 मार्च	महाशिवरात्रि	शनिवार	02 अप्रैल	चैत्र नवरात्रारंभ/ नवसंवत्सरारंभ
शुक्रवार	04 मार्च	श्री रामकृष्ण परमहंस जयंती	सोमवार	04 अप्रैल	गणगौर
मंगलवार	08 मार्च	सूर्य षष्ठी	गुरुवार	07 अप्रैल	सूर्य षष्ठी
गुरुवार	10 मार्च	होलाष्टक	रविवार	10 अप्रैल	श्री राम नवमी/समर्थगुरु रामदास जयंती
सोमवार	14 मार्च	आमलकी एकादशी	मंगलवार	12 अप्रैल	कामदा एकादशी 'स्मा.'
गुरुवार	17 मार्च	होलिका दहन	गुरुवार	14 अप्रैल	महावीर जयंती/आंबेडकर जयंती
शुक्रवार	18 मार्च	होली/धूलिवंदन	शनिवार	16 अप्रैल	हनुमज्जयंती/चैत्र पूर्णिमा
शुक्रवार	25 मार्च	शीतलाष्टमी	मंगलवार	26 अप्रैल	वरूथिनी एकादशी
सोमवार	28 मार्च	पापमोचनी एकादशी	शनिवार	30 अप्रैल	शनि अमावस्या

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

जाग्रत युवाशक्ति

युवाशक्ति राष्ट्रीय विकास का आधार है। इस शक्ति को जाग्रत करके विकास के अनगिनत आयामों को खोला जा सकता है। युवाओं के कारण भारत को जनसंख्यामूलक लाभ मिल रहा है। युवाशक्ति के द्वारा भारत का युगांतरकारी परिवर्तन संभव है। सन् 1945 में हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिराए जाने और दूसरे विश्वयुद्ध में अपमानजनक पराजय झेलने के बाद जापान हर लिहाज से शक्तिहीन और पंगु हो चला था, लेकिन अपने राष्ट्रीय संकल्प और युवाओं की ताकत के बल पर वह एक बार फिर उठ खड़ा हुआ।

छोटे आकार और छोटी जनसंख्या वाले इस देश ने अपने बड़े हौसलों और अटूट संकल्प के साथ इतनी तरक्की की कि देखते-ही-देखते दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी आर्थिक ताकत बन गया। अपनी पराजय के दस साल के भीतर उसने बुलेट ट्रेन बना ली और उन्नीसवें साल में ओलंपिक खेलों का आयोजन कर लिया। जापान के पास न तो हम जैसा संख्याबल था और न ही हमारे जितने प्रचुर प्राकृतिक संसाधन। उसने जो कुछ किया वह अपनी मेहनत, लगन, संकल्प और प्रतिभा के बल पर किया।

हम तो उसकी तुलना में कहीं अधिक सौभाग्यशाली हैं और फिर हमारे पास उससे कहीं अधिक समय है। समृद्ध, गौरवशाली इतिहास और आदर्श, प्रेरणादायी व्यक्तित्व भी हमारी मजबूती है। युवाओं को चाहिए कि स्वामी विवेकानंद, जिनके जन्मदिन को हम राष्ट्रीय युवादिवस के रूप में मनाते हैं, के शब्दों को आदर्शवाक्य मानकर देश की शक्ल बदलने में जुट जाएँ। उन्होंने कहा था—उठो, चलो और तब तक मत रुको, जब तक कि लक्ष्य हासिल न हो जाए और फिर यह भी कि सारी शक्ति तुम्हारे भीतर समाहित है। अपने पर भरोसा रखो, तुम कुछ भी करने में सक्षम हो। हमारे युवाओं को अपनी शक्ति का एहसास अवश्य है।

टाइम्स ऑफ इंडिया के सर्वे में सवाल पूछा गया था कि भारत की सबसे बड़ी शक्ति क्या है? इसके जवाब में 61 प्रतिशत युवाओं ने कहा—युवाशक्ति। यह उनके आत्मविश्वास को दिखाती है। युवाओं ने भारत की उभरती अर्थव्यवस्था और लोकतंत्र को देश की सबसे बड़ी शक्ति माना। युवाशक्ति में युवाओं का गहरा विश्वास एक अच्छी चीज है, लेकिन यदि देश को अपने संसाधनों का बुद्धिमता और दूरदर्शिता के साथ इस्तेमाल करना है तो युवाओं को हर क्षेत्र में आगे बढ़ने के अवसर मुहैया कराने होंगे।

युवाओं को उनकी सही जगह न मिलने की वजहें कई हैं। हमारी शिक्षा-प्रणाली, जिसका केंद्रीय उद्देश्य छात्रों को कर्मचारी बना देने तक सीमित है—यह इस राष्ट्र की आधुनिक महत्त्वाकांक्षाओं तथा शक्तियों के साथ न्याय नहीं कर पा रही है। इसमें आमूलचूल परिवर्तन किए जाने चाहिए, जिससे न सिर्फ हर छात्र को उसकी दिलचस्पी तथा प्रतिभा के अनुरूप अध्ययन करने का अवसर मिले, बल्कि रट्टे वाली पढ़ाई के बजाय व्यवसाय तथा कौशल आधारित प्रायोगिक शिक्षा ग्रहण करने का मौका भी मिले। अन्यथा हमारे पास डिग्रीधारी तो बहुत होंगे, लेकिन कुशल पेशेवर नहीं। जिन देशों ने औद्योगिक तथा वैज्ञानिक तरक्की की है, वहाँ डिग्री पर नहीं; ज्ञान और विशेषज्ञता पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। हमें भी इस दिशा में जल्दी-से-जल्दी अपना रुख बदलने की जरूरत है।

आजादी के दशकों बाद भी भारत में साक्षरता का स्तर सिर्फ 63 फीसदी है। जिस चीन को हम अपना प्रतिद्वंद्वी मानते हैं, वहाँ यही आँकड़ा 93 प्रतिशत है। शोध-छात्रों की संख्या में तुलनात्मक वृद्धि के आँकड़ों के अनुसार राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की रिपोर्ट के अनुसार चीन में शोध-छात्र 85 प्रतिशत बढ़े हैं तो भारत में सिर्फ 20 प्रतिशत। चीन में हर साल छह लाख से ज्यादा छात्र इंजीनियरिंग में स्नातक डिग्री लेते हैं; जबकि भारत में 4.65 लाख के करीब। ऊपर से हमारे यहाँ शिक्षा की गुणवत्ता वांछित स्तर की नहीं है। अनेक देश भारत से उच्च अध्ययन के लिए आए छात्रों को अपने यहाँ दोबारा परीक्षा पास करने के लिए कहते हैं।

प्राथमिक स्कूलों से लेकर स्नातकोत्तर महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों से लेकर व्यावसायिक शिक्षण संस्थानों

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

तक में पढ़ाई की गुणवत्ता के साथ-साथ बुनियादी सुविधाओं और स्थितियों में भी तो सुधार होना चाहिए। शिक्षा में होने वाले कोई भी बदलाव नए जमाने की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किए जाने चाहिए। अच्छे शिक्षण संस्थानों की संख्या कम-से-कम इतनी जरूरी हो कि कोई भी प्रतिभाशाली और योग्य छात्र इंजीनियरिंग, प्रबंधन, चिकित्सा, लेखा और पेशेवराना विशेषज्ञताओं से जुड़े दूसरे पाठ्यक्रमों में प्रवेश से वंचित न हों।

अपने छात्रों को सक्षम बनाने के बाद आगे की राह वे खुद निकाल लेंगे और फिर नौकरी के बजाय उन्हें नवाचार (इनोवेशन) और अपना काम खड़ा करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। आज उच्च शिक्षा और रोजगार में भ्रष्टाचार का नासूर खतम होने का नाम ही नहीं लेता। अपना काम खोलने के लिए बैंकों से ऋण मिलना लगभग असंभव है।

देश में ढाँचागत विकास ने धीरे-धीरे रफ्तार पकड़ी है, लेकिन सरकारी अनिश्चितता और ठहराव हमारी अर्थव्यवस्था की रफ्तार में बड़ी बाधा बन रहे हैं। ढाँचागत विकास और अर्थव्यवस्था एकदूसरे के साथ सीधे जुड़े हुए हैं। इनमें से एक बढ़ेगा तो दूसरा भी स्वयं ही बढ़ेगा, लेकिन नीतिगत स्तर पर संदेह और स्थिरता आ गई तो पहले का किया गया प्रयास भी व्यर्थ हो जाएगा।

आवश्यकता है कि आर्थिक विकास की प्रक्रिया को फिर से गति दी जाए और सड़कों, परिवहन-व्यवस्था, बिजली, शिक्षण संस्थानों, बंदरगाहों, हवाई अड्डों, बाजारों, व्यावसायिक केंद्रों, कारखानों आदि के विकास की अलख जगे। इन पर खरच होने वाला धन व्यर्थ नहीं जाएगा। वह तो अपनी ही बुनियाद को मजबूत करने वाला है और यदि संरचनात्मक आधार का चौतरफा विकास होगा तो युवाओं के लिए नए-नए अवसर भी पैदा होंगे। दूरदर्शितापूर्ण आर्थिक नीतियाँ बनाने और उन पर अमल की प्रक्रिया युवा आकांक्षाओं को साकार करने से सीधी जुड़ी हुई है।

इस देश के सत्ताधारियों को चाहिए कि भविष्य की खातिर अब तो निर्णायक कदम उठाएँ। आज की सुस्त, यथास्थितिवादी तथा भ्रष्ट कार्य-संस्कृति को बदला जाए—उससे अवसरों के दरवाजे खुल जाएँगे। इस तरह बदलाव लाने की जरूरत है। गाँव-गाँव, कसबे-कसबे और शहर-शहर से उद्यमियों, विशेषज्ञों और कारोबारियों की कतारें लग जाएँगी और फिर हमारी अर्थव्यवस्था सुव्यवस्थित हो जाएगी। आधुनिकता, पाश्चात्य सभ्यता, विदेशी भाषाओं और जीवनमूल्यों से अच्छे तत्त्वों को ग्रहण करना तो ठीक है, किंतु उनके आगे नतमस्तक हो जाना उचित नहीं है।

अपनी सभ्यता, संस्कृति, राष्ट्र, धर्म और भाषा हमारी पहचान हैं। उन्हें हमारे रक्त में बहते रहना चाहिए, हमारे हृदय में धड़कते रहना चाहिए। हमारे युवक अपनी जड़ों से न कट जाएँ, अपने संस्कारों से कटी पतंग की तरह विमुक्त न हो जाएँ। यह सुनिश्चित करना सरकार, समाज और व्यक्ति के स्तर पर हमारा साझा सरोकार होना चाहिए। राष्ट्रीय विकास में युवाओं की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अतः युवाओं को स्वयं में आत्मविश्वास जगाना चाहिए तथा हमें उनको आगे बढ़ने के लिए अवसर प्रदान करना चाहिए। ❑

हमें दस हजार ऐसे साथी और सहयोगी चाहिए, जो व्रतशील हों। प्रतिज्ञा करें तो निबाहें। परिस्थितियों की आड़ में अपने मन की दुर्बलता को न छिपाएँ। समुद्र के मध्य खड़े हुए प्रकाशस्तंभ की तरह अकेले ही उधर से गुजरने वाले नाविकों का मार्गदर्शन करते रहें। न अकेलेपन की शिकायत करें, न साथियों की तलाश। जिम्मेदारी अपनी अनवरतता की निभाएँ। जिस व्रत को धारण करें, उसे हर स्थिति में अंत तक पालन ही करते रहें।

—परमपूज्य गुरुदेव

चित्तशुद्धि एवं व्यक्तित्व का रूपांतरण

मानव जीवन इस सृष्टि का सबसे बड़ा सौभाग्य है; क्योंकि बीजरूप में ईश्वर ने इसमें वे सारी संभावनाएँ भरी हुई हैं, जो स्वयं उसमें हैं। इसी आधार पर मानव जीवन के स्वरूप को सत्-चित्-आनंद का स्वरूप कहा गया है, जो अपने चरम विकास को प्राप्त करने पर ईश्वरतुल्य हो जाता है।

अस्तित्व के इस आध्यात्मिक स्वरूप का बोध एवं जागरण इस जीवन का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है। इसी आधार पर परमपूज्य गुरुदेव ने मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण की बात कही। सांसारिक वासना-तृष्णा और मोह-माया में ग्रसित जीवन के लिए यह एक तरह से नया जन्म है, जिसे द्विज के रूप में परिभाषित किया गया है।

साधना के आधार पर या दैवी कृपावश आध्यात्मिक जागरण हो सकता है, जो यह दरसाता है कि हम किन ऊँचाइयों तक पहुँच सकते हैं, लेकिन किन गहराइयों तक गिर सकते हैं यह नहीं। इसका निर्धारण चित्त में जड़ जमाए संस्कार करते हैं, जो चित्तवृत्तियों के रूप में जीवन एवं व्यवहार को हर पल परिभाषित करते रहते हैं।

इनको रूपांतरित किए बिना जीवन कब आध्यात्मिक पतन की स्थिति में आ जाए कह नहीं सकते, इसीलिए जीवन-साधना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है, जिसके माध्यम से चित्त के परिष्कार का कार्य सिद्ध किया जाता है, इसमें किसी तरह का प्रमाद या लापरवाही घातक सिद्ध हो सकती है और इसलिए इसमें सतत संलग्न रहना पड़ता है।

जीवन के अनुभव व कर्मरेखाएँ चित्त में संस्कारों के रूप में संचित होती हैं, जो वृत्तियों के रूप में अपना परिचय देती हैं। इनका पता तभी चलता है, जब ये क्रियाओं के रूप में प्रत्यक्ष होती हैं अन्यथा ये अवचेतन में इतनी गहरी दबी रहती हैं कि इनका एहसास भी नहीं हो पाता। यहाँ तक कि जब ये अवचेतन की सतह पर उभर रही होती हैं, तब भी इनका पता नहीं चलता।

यह कुछ ऐसा है, जैसे किसी सरोवर में जब बुलबुला तल से उठता है तो बाहर से नहीं दिखता, यहाँ तक कि सतह के समीप पहुँचने पर भी इसका आभास नहीं हो पाता, जब तक कि यह सतह पर फूट नहीं पड़ता और लहर के रूप में नहीं दिखता। हम इसको लहर बनने से रोक सकते थे यदि हमें इसके उद्गम का पता चलता। इसी तरह से चित्त में संस्कारों के बीजरूप में बोध के साथ इनका परिमार्जन करते हुए निग्रह संभव होता है।

मनोविज्ञान इनके स्वरूप को अचेतन में विद्यमान मानता है, हालाँकि उसके रूपांतरण को लेकर इसकी समझ स्पष्ट नहीं; जबकि भारतीय अध्यात्म विज्ञान इन पर गहन अंतर्दृष्टि लिए हुए है एवं इनके रूपांतरण की स्पष्ट राह सुझाता है।

इसके अनुसार मन एक झील की तरह है, जिससे लहरें उठती रहती हैं। जैसे आँखें, बाहरी दृश्य को देखने की उत्प्रेरक हैं, जो दृश्य को मन तक ले जाती हैं। इनके साथ चित्त में एक लहर उत्पन्न होती है, जो एक विचार, भाव या इच्छा के रूप में हो सकती है।

जब यह लहर मस्तिष्क से उभरती है, तो इसे विचार कहते हैं। जब यह हृदय से उभरती है, तो इसे भाव कहते हैं और जब यह मस्तिष्क और हृदय, दोनों से एक समान उठती है तो इसे इच्छा कहते हैं, जो क्रिया के रूप में परिणत होती है। इन लहरों के साथ आत्मा स्वयं को जब जोड़कर देखती है तब उसके अनुसार वह अपना स्वरूप निर्धारित करती है।

इन लहरों में से कुछ मन के उच्च धरातल से उद्भूत होती हैं, तो कुछ निम्न धरातल से। निम्न स्तर से उभरने वाली तरंगें संकट पैदा करती हैं। महर्षि पतंजलि के अनुसार अनात्म तत्त्वों से जब आत्मतत्त्व स्वयं को जोड़कर देखता है, तो वह एक तरह से हवा में महल बनाकर, भ्राँति के स्वर्ग में वास कर रहा होता है, जिस कारण आत्मा अहंकार, राग-द्वेष, विषय-भोग के संसार में लिप्त रहती है।

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

यह बाहर से कितना भी सुंदर एवं सुखकर क्यों न प्रतीत होता हो, लेकिन अपने वास्तविक स्वरूप से दूर होता है। यह भ्रांति ही जीवन के अधूरेपन और दुःख का मूल कारण है, जिसका परिमार्जन आवश्यक हो जाता है। इसके लिए हमें अपने दृष्टिकोण में आमूलचूल परिवर्तन करना पड़ता है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिक मन की वृत्तियों व आदतों को उच्चस्तरीय दिशा देने के लिए उदात्तीकरण या सब्लिमेशन की बात करते हैं व इसे व्यक्ति के समाजीकरण से जोड़कर देखते हैं, जिसके आधार पर पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक एक सीमा तक ही चित्त का परिष्कार संभव मानते हैं।

भारतीय चिंतन का इसको लेकर एक विशिष्ट दर्शन है। इसके अनुसार हर व्यक्ति चेतन व अचेतन रूप में आनंद की खोज में रहता है, जो इंद्रियसुख भोग के कारण गलत दिशा में भटक जाता है। इसको नैतिक एवं आध्यात्मिक अनुशासन में कसते हुए सही दिशा दी जा सकती है व चित्त का समग्र रूपांतरण किया जा सकता है।

वस्तुतः मनुष्य अच्छाई और बुराई का मिश्रण है। आश्चर्यजनक रूप में अच्छाई के साथ उसमें भयावह बुराइयाँ भी विद्यमान रहती हैं। उसमें एक ओर जहाँ पापवृत्तियाँ हैं तो दूसरी ओर पुण्यवृत्तियाँ भी होती हैं। हमारे अंदर स्वार्थपरता हो सकती है, लेकिन त्याग का भाव भी रहता है।

एक भाग में क्रोध और अहंकार भरा हो सकता है, लेकिन साथ ही दया और करुणा भी हो सकते हैं। एक ओर हम वासनाओं के दास हो सकते हैं तो वहीं हमारे भीतर असाधारण नियंत्रण की शक्ति भी होती है। जीवन के दोनों छोरों के प्रति सम्यक दृष्टि रखते हुए हम सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धन और दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन कर सकते हैं। जैसे-जैसे हमारे भाव परिष्कृत होते जाएँगे, वैसे-वैसे हमारे चित्त का शुद्धीकरण होगा और हम आत्मबोध की ओर अग्रसर होंगे।

हालाँकि अंतर में विद्यमान क्रोध, भय, ईर्ष्या, द्वेष आदि भाव-विकारों का निग्रह कठिन होता है, लेकिन असंभव भी नहीं। अध्यात्म शास्त्र मानता है कि अभ्यास के द्वारा इनको साधा जा सकता है। निम्नवृत्तियों का उदात्तीकरण नैतिक अनुशासन एवं आध्यात्मीकरण के आधार पर रूपाकार लेता है।

एक ओर जहाँ इसके लिए कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग जैसे मार्गों का विधान है तो महर्षि पतंजलि इसके लिए अष्टांगयोग का सुव्यवस्थित मार्ग सुझाते हैं, जिसके अंतर्गत साधना-पथ यम-नियम के साथ प्रारंभ होकर आसन-प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा के साथ आगे बढ़ता है।

इस तरह नैतिक गुणों के साथ आध्यात्मिक अनुशासन का अभ्यास किया जाता है। मन को आध्यात्मिक ध्येय पर केंद्रित करते हुए इसको व्यर्थ के चिंतन व इधर-उधर की भटकन से रोका जाता है और इस सुरदुर्लभ जीवन के मूलभूत उद्देश्य को पूरा करने में सतत संलग्न सचेष्ट रखा जाता है।

इसी के साथ चित्त में जड़ जमाए वासना के बीज को परिष्कृत व नियंत्रित करने का विधान हाथ लगता है, जो ध्यान की सशक्त विधि है। ध्यान को आध्यात्मिक रूपांतरण की कुंजी कह सकते हैं, जिसके आधार पर क्रमशः चित्त में जड़ जमाकर बैठी सूक्ष्म वासनाओं का परिमार्जन होता है और साधक आध्यात्मिक जीवन के आदर्श आत्मज्ञान व आत्मबोध की अवस्था को प्राप्त होता है।

हालाँकि यह तभी संभव होता है, जब नैतिक अनुशासन एवं प्रार्थना के आधार पर मन को एक स्तर तक शांत एवं स्थिर कर लिया गया हो। इसके उपरांत ध्यान की गहराइयों में उतरने पर हम चित्त के उन सूक्ष्म अवरोधों से परिचित होते हैं जो शरीरजन्य कर्म एवं संस्कारों के परिपाक करने के बाद भी चित्त में संगृहीत रह जाते हैं। ध्यान से हम इनका परिमार्जन करते हैं। क्रमिक रूप में हम उस अंतर्दृष्टि और आत्मनिरीक्षण की क्षमता को विकसित कर पाते हैं, जो सूक्ष्म स्तर पर मन की कामनाओं, वासनाओं आदि को खोजकर इनका परिमार्जन कर सके।

इस तरह साधक जिन विजातीय भावनाओं एवं वृत्तियों से स्वयं को जोड़े बैठा होता है, अभ्यास के साथ इनसे विलग होता है और द्रष्टा भाव में आकर इनको नियंत्रित करता है।

ध्यान के साथ वह अंतर्प्रज्ञा जाग्रत होती है, जो वासनाओं व कामनाओं को दग्ध कर सके। इसके साथ क्रमिक रूप में आत्मा अपने सनातन गौरव के साथ प्रकाशित होती है और व्यक्ति स्थायी सुख-शांति और आनंद के साम्राज्य में प्रवेश करता है। ❑

प्रभुकृपा बिनु मिलैं नहिं संता

जगलाल की उम्र मात्र 12 वर्ष की थी, तभी उसके माता-पिता स्वर्ग सिधार गए। तब जगलाल के लिए जीवन निर्वाह करना भी बहुत मुश्किल हो गया। कुछ दिनों तक उसके रिश्तेदारों ने उसकी मदद की, पर अब वे भी उससे मुँह मोड़ने लगे थे। अनाथ जगलाल के लिए अब कोई सहारा, कोई आसरा नहीं बचा था। यही कारण था कि अब जगलाल बुरी संगत में पड़कर चोरी करना, जुआ खेलना, नशा करना आदि बुरी आदतों का शिकार हो चला था।

समय के साथ-साथ जगलाल बड़ा हुआ, पर अभी तक वह अपनी बुरी आदतों से मुक्त नहीं हो पाया था। कभी-कभी उसे अपने किए पर बहुत पश्चात्ताप भी होता था, पर उसकी बुरी आदतें उससे छुटाए न छूटती थीं। एक बार अब से मैं चोरी नहीं करूँगा, जुआ नहीं खेलूँगा, नशा नहीं करूँगा आदि विचार करके वह घर से बाहर ही नहीं निकला। तीन दिन हो गए, पर फिर भी वह भूखा-प्यासा अपने घर में ही पड़ा रहा। तीसरी रात उसे जब असह्य भूख लगी तो वह घर से बाहर निकला।

वह अमावस की अँधेरी रात थी। चारों तरफ सन्नाटा-ही-सन्नाटा था। रह-रहकर कुत्तों के भौंकने की आवाजें रात्रि को और भी भयावह बना रही थीं। जगलाल उस घनघोर रात्रि में किसी घर में चोरी करने को चला जा रहा था, पर भूख-प्यास के मारे अब और दूर जाना उसके लिए संभव न था। अस्तु वह थोड़ी दूर पर दिखाई पड़ रही एक छोटी-सी कुटिया की ओर चोरी करने की नीयत से बढ़ चला।

वह कुटिया के अंदर दाखिल हुआ। उस कुटिया में उसे कोई कीमती चीज दिखाई नहीं पड़ी। कहीं भगवा वस्त्र, तो कहीं चिमटे, कहीं आसन तो कहीं माला दिखाई पड़े। वह समझ गया कि इस घर में कोई बड़ी चीज तो हाथ लगने से रही; क्योंकि यह घर तो किसी साधु का जान पड़ता है। उसने फिर भी सोचा, शायद कुछ खाने-पीने की वस्तु ही मिल जाए तो अच्छा है। अभी भूख तो मिट जाएगी। यह सोचकर वह कुटिया में इधर-उधर तलाश कर ही रहा था कि तभी कुटिया में एक संत ने प्रवेश किया।

यह संत ब्रह्मदास थे, जो कुटिया से बाहर एक शिला पर ध्यान में बैठे थे और उस समय ध्यान समाप्त कर कुटिया में रात्रिशयन हेतु आए थे। वे वर्षों की साधना से ब्रह्मज्ञान की उपलब्धि प्राप्त कर पाए थे। वे एक मुक्तात्मा थे। उनकी दृष्टि में यह सारा संसार ही ब्रह्मरूप था। हर जीव में ही उन्हें ब्रह्म का नूर दिखाई पड़ता था। उनका तप उनके चेहरे से, उनकी दृष्टि से बरस रहा था। संयोगवश जगलाल का सामना आज ऐसे ही मुक्तपुरुष, सिद्धपुरुष से हो गया था।

उन्हें देखते ही जगलाल घबरा गया, पर संत ब्रह्मदास उससे बड़े प्रेम से बोले—"पुत्र! तुमने आधी रात में यहाँ आने का कष्ट कैसे किया? कहो! मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ?" जगलाल संत ब्रह्मदास की प्रेमभरी बातें सुनकर भावविह्वल हो गया। संत ब्रह्मदास ने उसे बैठने को आसन दिया और बोले—"पुत्र! लगता है तुम्हें जोरों की भूख लगी है। मैंने शाम को धूनी में कुछ शकरकंद डाले थे, वे अब भुन गए होंगे। उन्हें मैं अभी निकाल लाता हूँ। यदि तुम शाम नें ही आ गए होते तो हम दोनों मिलकर खा लेते।"

संत ब्रह्मदास धूनी से शकरकंद निकाल लाए और उन्हें जगलाल को खाने के लिए दिया। एक लोटे में ठंढा, मीठा जल उन्होंने उसे दिया और उसके पास ही बैठ गए। जगलाल को उन्हें खाकर बहुत तृप्ति मिली। पास में बैठे संत उसका हाल-चाल पूछते रहे। उससे वे प्रेमभरी बातें करते रहे, वैसे ही जैसे अपने बच्चे को खिलाते समय माँ उससे उसका हाल-चाल जानने को बातें करती है। संत ब्रह्मदास के प्रेमपूर्ण व्यवहार से जगलाल निहाल हो गया। उसका हृदय, उसका मन द्रवित हो उठा।

वह सोचने लगा कि मेरे जैसे बुरे व्यक्ति के लिए भी इन संत के हृदय में कितना प्रेम है और एक मैं हूँ, जो कितना निकृष्ट और गया-गुजरा जीवन जी रहा हूँ। धिक्कार है ऐसी जिंदगी पर। उसे अपने किए पर घोर ग्लानि हुई। उसकी आँखों से आँसुओं का सैलाब उमड़ पड़ा। वह संत

ब्रह्मदास के चरणों से लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगा। संत ब्रह्मदास ने उसे अपने हृदय से लगा लिया। उसने उनको अपनी सारी आपबीती कह सुनाई। उसने उन्हें बताया कि वह कितना बुरा आदमी है। वह बोला—''मैं तो आपकी कुटिया में भी चोरी करने ही आया था और आप मुझसे पुत्रवत् स्नेह कर रहे हैं। मैं बहुत पापी हूँ! मुझे माफ कर दीजिए।''

संत ब्रह्मदास ने अपने हाथों से उसके आँसू पोंछे और बोले—''पुत्र! हर जीव ईश्वर का ही अंश है। तुम भी उसी ईश्वर के अंश हो। तुममें और हममें कोई भेद नहीं। प्रारब्धवश तुम बुरे कर्मों में संलग्न रहे, अपने पूर्व के कर्म संस्कारों के कारण तुम न चाहते हुए भी चोरी, नशा, हिंसा आदि बुरे कर्म करते रहे, पर अब तुम्हारे भीतर भी ज्ञान का सूरज उगने वाला है, जिसके प्रकाश में तुम अपने हृदय में विराजमान आत्मरूप भगवान को अनुभव कर सकोगे। आज से तुम एक नए जीवन की शुरुआत करो। अब इतनी रात में तुम कहाँ जाओगे। मेरे पास एक चटाई है, इसे ले लो और आराम से यहाँ सो जाओ।''

रात्रि में जगलाल के सपने में भगवान ने उसे दर्शन दिया और बोले—''वत्स! मेरी कृपा से ही तुम्हें संत के दर्शन हुए हैं। तुम इन्हीं के चरणों में रहकर अपने दुर्भाग्य को सौभाग्य में बदल डालो।'' सुबह हुई। जगलाल ने संत को अपने स्वप्न के बारे में बताया। संत ब्रह्मदास तो भक्तवत्सल भगवान की लीला को बखूबी जानते थे। अस्तु वे जगलाल के स्वप्न की बातें सुनकर मुस्कराए और बोले—''बेटा! भगवान बड़े कृपालु हैं, दयालु हैं, उन्होंने गीता में यह स्पष्ट आश्वासन भी दिया है कि यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है। जो सब कुछ त्यागकर सच्चे हृदय से मेरी शरण में आ जाता है, उसे मेरी शरण में अवश्य ही आश्रय प्राप्त होता है। इसमें कुछ भी संशय नहीं है।''

उस दिन के बाद से जगलाल उनकी कुटिया में ही रहने लगा। संत ब्रह्मदास द्वारा निर्धारित आध्यात्मिक जीवनशैली अपनाने से उसका जीवन रूपांतरित होने लगा। साधना के प्रभाव से उसके संस्कार, विकार नष्ट होते गए, मन निर्मल होने लगा, हृदय में भाव-संवेदना का जागरण होने लगा। अंततः उसे जीवन के आखिरी पड़ाव पर आत्मबोध हुआ और इस प्रकार वह जगलाल से संत जगतलाल बन गया। सचमुच प्रभुकृपा से यदि सच्चे संत मिल जाएँ तो व्यक्ति का जीवन निहाल होता-ही-होता है और ऐसे परम स्नेही संत भगवत्कृपा से ही मिलते हैं। जैसा कि कहा गया है—'प्रभु कृपा बिनु मिलै नहिं परम स्नेही संत।' ❑

तानसेन सम्राट अकबर के दरबार में गायक थे। अकबर जब कभी तानसेन के गायन की प्रशंसा करते, तो तानसेन कह देते—''यह सब मेरे गुरुदेव संत हरिदास महाराज के चरणों का प्रताप है। उन जैसा महान गायक पृथ्वी पर दूसरा नहीं है।'' उनकी बातें सुनकर अकबर हरिदास जी के दर्शनों के लिए व्याकुल हो उठे। तानसेन के साथ आश्रम में पहुँचकर उन्होंने संत हरिदास के दर्शन किए और उनके भक्ति-पदों को सुनकर अपनी सुध-बुध खो बैठे। अकबर ने तानसेन से पूछा—''तानसेन! आप भी बहुत अच्छा गाते हैं, परंतु जो रस आपके गुरु संत हरिदास के गायन को सुनकर मिला, वह आपका गायन सुनकर नहीं मिला। इस अंतर का क्या कारण है?'' तानसेन ने उत्तर दिया—''हुजूर! संत हरिदास ईश्वर के प्रेम के गीत निस्स्वार्थ भाव से गाते हैं। जबकि मैं दरबारी गायक होने के नाते धन के लोभ में आपकी प्रशंसा का राग अलापता हूँ। अतः दोनों की वाणी में अंतर होना स्वाभाविक है।'' यह सुनते ही अकबर संत हरिदास के समक्ष नतमस्तक हो उठे।

पर्व विशेष

शहीदे आजम के अंतिम लम्हे

क्रांति कुमार शहीदे आजम भगत सिंह के खास दोस्त थे। उनका मूल नाम हंसराज था, मगर एक क्रांतिकारी हंसराज के सरकारी मुखबिर बन जाने के कारण स्वयं भगत सिंह ने अपने दोस्त हंसराज का नाम बदलकर क्रांति कुमार रख दिया था। उनकी दोस्ती इतनी गहरी थी कि शहीदे आजम ने अपने द्वारा स्थापित आजाद नौजवान सभा का दूसरा महासचिव क्रांति कुमार को बनाया था। पहले महासचिव गणपत राय जब गिरफ्तार कर लिए गए तो भगत सिंह ने उनके स्थान पर यह नियुक्ति की थी। क्रांति कुमार ने अपने संस्मरणों में नेताजी से हुई निजी मुलाकातों पर बहुत लिखा था। क्रांति कुमार विभाजन के बाद पहले दिल्ली और फिर पानीपत आ बसे थे।

भारतीय पंजाब के एक आई०ए०एस० अधिकारी आर०के० कौशिक ने भगत सिंह के अंतिम दिनों को लेकर एक गंभीर शोधकार्य किया। उन दिनों के कई सरकारी दस्तावेजों को खँगालने और उस काल के कुछ बचे-खुचे लोगों से एकत्रित प्रामाणिक जानकारी के आधार पर कौशिक ने अनेकों नई जानकारियाँ विश्व के सामने रखीं। श्री कौशिक के अनुसार ये तीनों—भगत सिंह, राजगुरु व सुखदेव, भारत की सामूहिक चेतना व जागरूकता के प्रतीक बन गए थे।

यह तथ्य अब इतिहास में दर्ज है कि शहीदे आजम व उनके दोनों साथियों राजगुरु व सुखदेव को लाहौर की ही सेंट्रल जेल में 23 मार्च, 1931 को फाँसी दे दी गई थी। इससे पहले 16 मार्च को गवर्नर हाउस में शहर व सूबे में कानून-व्यवस्था का जायजा लेने के लिए वहाँ के गवर्नर ने एक विशेष बैठक बुलाई थी। वैसे भी उन दिनों पंजाब के गवर्नर जेफ्री मेटमोरेंसी कड़े सुरक्षा घेरे में रहते थे। कुछ समय पूर्व पंजाब विश्वविद्यालय में दीक्षांत समारोह के मध्य एक युवा स्वाधीनता सेनानी हरिकिशन तलवार ने उन पर गोली चला दी थी। मेटमोरेंसी उस हमले में बुरी तरह घायल हो गए थे। उस दिन जब बैठक बुलाई गई तब भी मेटमोरेंसी घावों की पीड़ा से मुक्त नहीं हो पाए थे।

उसी बैठक में पंजाब के मुख्य सचिव डीजी बॉयड, गृह सचिव, आईजी जेल और जिलाधीश आदि शामिल थे। निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार फाँसी 24 मार्च की सुबह के लिए तय थी। श्री कौशिक द्वारा संकलित विवरण के अनुसार 22 मार्च की रात पंजाब एक मौसमी तूफान से जूझ रहा था। इससे पहले हाईकोर्ट के न्यायाधीश एमवी भिंडे आईसीएस उस याचिका को भी खारिज कर चुके थे, जिसमें भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव के खिलाफ सुनवाई करने वाले स्पेशल ट्राइब्यूनल के अधिकारों को चुनौती दी गई थी। याचिका में कहा गया था कि उस ट्राइब्यूनल को 'डेथ वारंट' जारी करने का अधिकार ही नहीं था।

23 मार्च को सुबह सब कुछ शांत था। आँधी थम गई थी, मगर सेंट्रल जेल में जेल सुपरिन्टेंडेंट मेजर पी० डी० चोपड़ा के कमरे में कानाफूसी जारी थी। भगत सिंह से आखिरी मुलाकात का समय प्रातः 10 बजे का तय था। भगत सिंह के वकील प्राणनाथ मेहता उनसे सबसे पहले मिले।

भगत सिंह ने उन्हें कुछ कागजों के पुलिंदे सौंपे और मेहता नम आँखों से बमुश्किल स्वयं को सँभालते हुए बाहर आए। उसके बाद चोपड़ा व चार अन्य अधिकारी स्टीड, बार्कर, रॉबर्ट्स और हॉर्डिंग उनसे मिले। वे भगत सिंह को अपनी ओर से परामर्श दे रहे थे कि वे ब्रिटिश साम्राज्य से क्षमा की अपील करें, मगर भगत सिंह ने उनकी पूरी बात सुने बिना ही उनकी यह नापाक सलाह रद्द कर दी।

24 मार्च को संभावित जनाक्रोश के मद्देनजर अँगरेजी सरकार के द्वारा सभी क्रांतिकारियों को फाँसी 23 मार्च की शाम को ही देने का निर्णय ले लिया गया। यह सूचना सीनियर जेल वार्डन छतर सिंह ने बेहद भारी मन से उखड़े हुए लहजे में भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को दी थी। उस दिन सूरज भी उदास-उदास ही निकला था, मगर भगत सिंह, राजगुरु व सुखदेव पूरी तरह से संयत व शांत थे।

भगत सिंह ने अपनी बैरक के मुसलिम मेहतर 'बेबे' से कहा कि वह शाम को फाँसी से पहले उसके लिए कुछ

खाना बनाकर ले आए। 'बेबे' गद्‌गद हो गया। उसने वादा किया कि वह शाम से पहले ही खाना स्वयं बनाकर ले आएगा।

उसी दिन भगत सिंह ने क्रांति कुमार को भी याद किया और बोले—''कंबख्त! आज रसगुल्ले लाने वाला यार भी नहीं आया।'' मगर शाम को न तो बेबे को ही अंदर आने दिया गया, न ही क्रांति कुमार को। दोपहर बाद जेल के भीतर व बाहर अचानक गतिविधियाँ तेज हो गईं।

एडीशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट शेख अब्दुल हमीद, सिटी मजिस्ट्रेट राय साहब लाल नाथू राम, कसूर के डीएसपी सुदर्शन सिंह, डीएसपी (हेडक्वार्टर्स) जे०आर० मोरिस, सैकड़ों पुलिस जवानों सहित जेल के भीतर पहुँच चुके थे।

सबके मन में कहीं-न-कहीं अपनी निजी सुरक्षा को लेकर भी भय बैठ गया था। जल्लाद मसीह, जो लाहौर के ही नजदीकी कसबे शाहदरा का रहने वाला था, वहाँ पहले ही पहुँच चुका था। तीनों क्रांतिकारियों को जब उनकी कोठरियों से बाहर लाया गया तो तीनों ने 'इंकलाब जिंदाबाद' के नारे लगाए।

पानीपत में बाद में आकर बसे क्रांतिकारी क्रांति कुमार ने अपने एक लेख में बताया था कि वह भी उस समय जिला कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी पिंडीदास सोढ़ी के साथ थे और दोनों ने ही सेंट्रल जेल से बुलंद किए गए नारे सुने थे।

सोढ़ी का घर जेल के नजदीक ही था। इन नारों में धीरे-धीरे अपनी-अपनी बैरकों से अन्य कैदियों की बुलंद आवाजें भी शामिल हो गईं। लाहौर में उन दिनों के डिप्टी कमिश्नर ए०ए० लेन रॉबर्ट्स सन् 1909 बैच के आईसीएस अफसर थे।

जब तीनों को फाँसी के तख्ते की ओर ले जाया गया तो रॉबर्ट्स ने भगत सिंह से कुछ बात की, जिसका जवाब सबको सुनाई पड़ा। भगत सिंह ने यही कहा था—''लोग जल्दी ही देखेंगे और सदा याद रखेंगे कि भारतीय आजादी के सिपाही कितनी बहादुरी के साथ मौत का फंदा चूमते हैं। तीनों ने काला नकाब मुँह पर लपेटने से इनकार कर दिया था। भगत सिंह ने काला नकाब डिप्टी कमिश्नर के चेहरे पर दे मारा था।

भगत सिंह का आखिरी नारा था—ब्रिटिश सरकार मुर्दाबाद, इंकलाब जिंदाबाद। मसीह ने फाँसी के तख्ते का लीवर खींचा। उसके लीवर खींचने के साथ भगत सिंह पहले शहीद हुए, फिर राजगुरु और अंत में सुखदेव ने बलिदानी के सोपान को चूमा।

फाँसी के समय मौजूद अन्य लोगों में किंग एडवर्ड मेडिकल कॉलेज के प्रिंसिपल लेफ्टिनेंट कर्नल हार्पर नेलसन और सिविल सर्जन लेफ्टिनेंट कर्नल एन०एस० सोढ़ी भी वहाँ मौजूद थे। उन्होंने ही तीनों शहीदों की मृत्यु तस्दीक की।

उस समय जेल के बाहर भी सैकड़ों लोग एकत्र हो चुके थे। दो पुलिस अधिकारी सुदर्शन सिंह और अमर सिंह तीन फौजी ट्रकों के साथ तीनों शहीदों के शव वहाँ से निकालकर ले गए। उनके साथ एक सिक्ख ग्रंथी व कसूर का एक ब्राह्मण पुजारी जगदीश आचार्य भी थे, ताकि अंतिम क्रिया हो सके।

अंतिम क्रिया के बाद शवों को रात दस बजे हुसैनीवाला के पास गंडा सिंहवाला गाँव के बाहर चिता की लपटों के सुपुर्द कर दिया गया। उनकी अस्थियाँ भी जल्दबाजी में ही सतलुज नदी में बहा दी गईं। वैसे इस 'लाहौर षड्यंत्र केस' की टीस भारत की हवाओं में हमेशा बनी रहेगी।

तकलीफ इस बात की भी रहेगी, इतनी वैचारिक शहादतों को भी लोगों ने उनको उनकी महानता के मुताबिक सम्मान नहीं दिया। ये शहीद, जिस मुल्क की आजादी के लिए कुरबान हुए थे, उसी मुल्क का एक हिस्सा आज का पाकिस्तान भी था। इस नापाक केस में उन सबको पुरस्कारों-सम्मानों से नवाजा गया, जो या तो मुखबिर बने या झूठे सरकारी गवाह। इस मामले में 457 लोगों की गवाहियाँ हुई थीं।

शहीदों के चार साथी हंसराज वोहरा, जयगोपाल, फणींद्रनाथ घोष और मनमोहन बैनर्जी सरकारी गवाह बन गए थे। वोहरा के मन में कहीं अपराध बोध का अंश भी था। उसने नगद पुरस्कार या जागीर लेने से इनकार कर दिया था, मगर उसे सरकारी खरच पर लंदन स्कूल ऑफ इकोनोमिक्स में पढ़ने के लिए भेजा गया।

बाद में उसने जर्नलिज्म की डिग्री ली और वॉशिंगटन में एक भारतीय अखबार का रिपोर्टर बनकर चला गया। वहीं 40 के दशक में उसकी कहीं मृत्यु हो गई। जयगोपाल को 20 हजार का नकद पुरस्कार मिला, जबकि फणींद्रनाथ घोष और मनमोहन बैनर्जी को बिहार के जिला चंपारण में 50-50 एकड़ भूमि दी गई।

उस समय के जेल सुपरिन्टेंडेंट मेजर चोपड़ा को डीआईजी जेल बना दिया गया और आईजी जेल एफए बार्कर को 'नाइटहुड' से सम्मानित किया गया। फाँसी के समय डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट खान साहब मुहम्मद अकबर खान भावुक होकर रोने लगे थे। उन्हें सजा के तौर पर एएसपी बना दिया गया और 7 मार्च, 1937 को उनसे खान साहब का सम्मान भी वापस ले लिया गया। डीएसपी सुदर्शन सिंह, जिसने तीनों शहीदों के शवों की अमानवीय तरीके से अंतिम क्रिया संपन्न की थी, को भी अतिरिक्त एसपी कसूर के पद पर तरक्की दे दी गई।

शहीदे आजम भगत सिंह ने अपने हस्तलिखित चार लेख फाँसी वाले दिन वकील प्राणनाथ मेहता को सौंपे थे। प्राणनाथ मेहता ने वे चारों लेख भगत सिंह के एक क्रांतिकारी साथी विजय कुमार सिन्हा को दे दिए थे। सिन्हा ने अपने जालंधर में रहने वाले एक दोस्त के घर में वे लेख छिपा दिए थे, मगर उस दोस्त ने पुलिस के छापे के भय के मारे सारे लेख चूल्हे में फेंक दिए थे और इस तरह से उस महान शहीद के द्वारा लिखे गए वे अंतिम महत्त्वपूर्ण दस्तावेज नष्ट हो गए। उसके बाद की घटनाओं पर शोध का क्रम आज भी जारी है। शहीदे आजम भगत सिंह के अंतिम लम्हे अपने देश के प्रति उत्सर्ग होने की प्रेरणा भरते हैं। ❑

बात उन दिनों की है, जब डॉ० राममनोहर लोहिया जर्मनी के हम्बोल्ट विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र में पी-एच०डी० कर रहे थे। भारत में अँगरेजी शासन के खिलाफ गांधी जी के नेतृत्व में स्वाधीनता आंदोलन जोरों पर था। लोहिया जी के पिता हीरालाल जी भी स्वाधीनता आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे थे। पिता अँगरेज सरकार के अत्याचारों की सूचना, पत्र द्वारा पुत्र को देते रहते थे, जिन्हें पढ़कर लोहिया जी के हृदय में अँगरेजी शासन के प्रति घृणा की भावना प्रबल हो उठती थी। इसी समय जिनेवा में लीग ऑफ नेशंस का अधिवेशन होने जा रहा था, जिसमें भारत का प्रतिनिधित्व बीकानेर के महाराजा कर रहे थे। बहुत प्रयत्नों के बाद लोहिया जी ने इस अधिवेशन की दर्शक दीर्घा में बैठने के दो पास हासिल कर लिए और अपने एक भारतीय मित्र के साथ दर्शक दीर्घा में जा बैठे। बीकानेर के महाराजा का भाषण भारत में अँगरेजी शासन की प्रशंसा और चापलूसी से भरा था। भाषण के दौरान लोहिया जी और उनके मित्र ने खूब सीटी बजाई और हूटिंग की। सभाध्यक्ष ने तुरंत उन्हें बाहर निकालने का आदेश दे दिया। अगले दिन के समाचारपत्र में लोहिया द्वारा सभापति को लिखा एक पत्र छपा, जिसमें उन्होंने भारत में हो रहे अँगरेजों के अत्याचार एवं भगत सिंह को दी गई फाँसी के बारे में विस्तार से चर्चा कर भारतीय प्रतिनिधि के भाषण की धज्जियाँ उड़ाईं थीं। जब किसी ने उनसे इस विषय में पूछा तो उनका जवाब था कि मेरा मकसद दुनिया के सामने भारत में चल रहे अन्यायपूर्ण अँगरेजी शासन की पोल खोलना था, जो मैंने कर दिखाया।

जरूरी है बेहतर जल प्रबंधन

जल ही जीवन है। जल के बिना जीवन की परिकल्पना भी संभव नहीं है। जल जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण घटक है। जल प्रकृति के सबसे महत्त्वपूर्ण संसाधनों में से एक है। पृथ्वी चारों ओर से जल से घिरी है, लेकिन मात्र 2.5 प्रतिशत पानी ही प्राकृतिक स्रोतों—नदी, तालाब, कुओं और बावड़ियों से मिलता है; जबकि शेष भूजल के रूप में है।

97 प्रतिशत जल-भंडारण तो समुद्र में है, लेकिन यह भी एक यथार्थ है कि भारत जल-संकट वाले देशों की पंक्ति के मुहाने पर खड़ा है। जल के इसी महत्त्व को ध्यान में रखते हुए सन् 2012 से सप्ताह भर तक प्रतिवर्ष विचार-विमर्श किया जाता है, जिसे सरकार ने भारत जल सप्ताह नाम दिया है। इसके आयोजन की जिम्मेदारी जल संसाधन मंत्रालय को सौंपी गई है। इसकी परिकल्पना भी इसी मंत्रालय ने ही की थी।

जल की उपयोगिता, प्रबंधन तथा अन्य जुड़े मुद्दों पर खुली चर्चा के लिए यह अंतरराष्ट्रीय मंच बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है, जिसमें देश-विदेश से आए विशेषज्ञों ने जल संसाधन के प्रबंधन और उसके क्रियान्वयन पर महत्त्वपूर्ण सुझाव भी दिए हैं।

समन्वित जल संसाधन प्रबंधन के लिए तीन आधारभूत स्तंभों को विशेषज्ञों ने जरूरी माना है—सामाजिक सहयोग, आर्थिक कुशलता और पर्यावरणीय एकरूपता। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जरूरी है कि नदियों के थालों (बेसिन) के अनुरूप कार्ययोजना बनाकर प्रबंधन किया जाए तथा बेसिन की नियमित निगरानी और मूल्यांकन किया जाए।

अपने देश में आयोजित जल सप्ताह में इसका स्वरूप ही बदल गया। इस बात पर आम सहमति रही कि कृषि, औद्योगिक उत्पादन, पेयजल, ऊर्जा विकास, सिंचाई तथा जीवन के लिए पानी की निरंतरता बनाए रखने के लिए सतत प्रयास की जरूरत है। नागरिकों को शुद्ध पेयजल उपलब्ध कराना सरकार की पहली प्राथमिकता है।

पहली बार जल से संबंधित विभिन्न मुद्दों पर विषयवार कार्ययोजना बनाने पर भी सहमति बनी। सन् 2016 के भारत जल सप्ताह में विदेशी विशेषज्ञों की प्रभावी भागीदारी के लिए अन्य देशों को भी इसमें शामिल किया गया। इस आयोजन में इजराइल को सहयोगी देश के रूप में शामिल किया गया और उसके विशेषज्ञों ने विशेष रूप से शुष्क खेती जल संरक्षण पर बहुत महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए।

इस विधा में इजराइल सिद्धहस्त है और इस तकनीक में वहाँ के वैज्ञानिक दुनिया भर में अपना लोहा मनवा चुके हैं। नदियों को आपस में जोड़ने के मुद्दे पर भी पहली बार अंतरराष्ट्रीय मंच पर खुली और विस्तृत चर्चा हुई। जल संसाधन मंत्रालय ने उनमें से कई सिफारिशों को क्रियान्वित करना शुरू कर दिया है। कम सिंचाई वाली खेती को बढ़ावा देना और प्रयोग किए गए पानी का पुनः उपयोग कारखानों, बागवानी और निर्माण उद्योग आदि में किया जाने वाला है। कुछ और सिफारिशों को भी लागू करने की तैयारी है।

इजराइल के मुकाबले भारत में जल की उपलब्धता पर्याप्त है, लेकिन वहाँ का जल प्रबंधन हमसे कहीं ज्यादा बेहतर है। इजराइल में खेती, उद्योग, सिंचाई आदि कार्यों में प्रयोग किए गए पानी का उपयोग अधिक होता है। इसीलिए उस देश के लोगों को जल संकट का सामना नहीं करना पड़ता। भारत में 80 प्रतिशत आबादी की पानी की जरूरत भूजल से पूरी होती है और इस सच्चाई से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि उपयोग में लाया जा रहा भूजल भी प्रदूषित होता है।

कई देश, खासकर अफ्रीका तथा खाड़ी के देशों में भीषण जल-संकट है। प्राप्त जानकारी के अनुसार दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों में रह रहे करोड़ों लोग जबरदस्त जल-संकट का सामना कर रहे हैं और असुरक्षित जल का उपयोग करने को मजबूर हैं। बेहतर जल प्रबंधन से ही जल-संकट से उबरा जा सकता है और उसका संरक्षण भी किया जा सकता है।

भारत में भी वही तमाम समस्याएँ हैं, जिनमें पानी की बचत कम और बरबादी ज्यादा है। यह भी सच्चाई है

कि बढ़ती आबादी का दबाव, प्रकृति के साथ छेड़छाड़ और कुप्रबंधन भी जल-संकट का एक बड़ा कारण है। पिछले कुछ वर्षों से अनियमित मानसून और वर्षा ने भी जल-संकट को बढ़ा दिया है। इस संकट ने जल-संरक्षण के लिए कई राज्यों की सरकारों को परंपरागत तरीकों को अपनाने को विवश कर दिया है। देश भर में छोटे-छोटे बाँधों के निर्माण और तालाब बनाने की पहल की गई है। इससे पेयजल और सिंचाई की समस्या पर कुछ हद तक काबू पाया जा सका है।

भारत में तीस प्रतिशत से अधिक आबादी शहरों में रहती है। आवास और शहरी विकास मंत्रालय के आँकड़े बताते हैं कि देश के लगभग दो सौ शहरों में जल और बेकार पानी के उचित प्रबंधन की ओर तत्काल ध्यान देने की जरूरत है। इसके कारण सतही जल को प्रदूषण से बचाने के उपाय भी सार्थक नहीं हो पा रहे हैं। खुद जल संसाधन मंत्रालय भी मानता है कि ताजा जल प्रबंधन की चुनौतियाँ लगातार बढ़ती जा रही हैं। सीमित जल संसाधन को कृषि, नगर निकायों और पर्यावरणीय उपयोग के लिए माँग, गुणवत्तापूर्ण जल और आपूर्ति के बीच समन्वय की जरूरत है।

देश में पिछले 70 सालों में तीन राष्ट्रीय जलनीतियाँ बनीं। पहली नीति सन् 1987 में बनी; जबकि सन् 2002 में दूसरी और सन् 2012 में तीसरी जलनीति बनी। इसके अलावा 14 राज्यों ने अपनी जलनीति बना ली है। बाकी राज्य तैयार करने की प्रक्रिया में हैं। इस राष्ट्रीय नीति में जल को एक प्राकृतिक संसाधन मानते हुए इसे जीवन, जीविका, खाद्य सुरक्षा और निरंतर विकास का आधार माना गया है। नीति में जल के उपयोग और आबंटन में समानता तथा सामाजिक न्याय का नियम अपनाए जाने की बात कही गई है।

मंत्रालय का कहना है कि भारत के बड़े हिस्से में, पहले ही जल की कमी हो चुकी है। जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण और जीवनशैली में बदलाव से जल की माँग तेजी से बढ़ने के कारण सुरक्षा के क्षेत्र में गंभीर चुनौतियाँ खड़ी हो गई हैं। जलस्रोतों में बढ़ता प्रदूषण पर्यावरण तथा स्वास्थ्य के लिए खतरनाक होने के साथ ही स्वच्छ पानी की उपलब्धता को भी प्रभावित कर रहा है।

जलनीति में इस बात पर बल दिया गया है कि खाद्य सुरक्षा, जैविक तथा समान और स्थायी विकास के लिए राज्य सरकारों को सार्वजनिक धरोहर के सिद्धांत के अनुसार सामुदायिक संसाधन के रूप में जल प्रबंधन करना चाहिए, हालाँकि पानी के बारे में नीतियाँ, कानून तथा विनियम बनाने का अधिकार राज्यों का है, फिर भी जल संबंधी सामान्य सिद्धांतों का व्यापक उद्देश्य राष्ट्रीय जल संबंधी ढाँचागत कानून तैयार करना है। यह वर्तमान समय की आवश्यक माँग है।

ऐसा इसलिए, ताकि राज्यों में जल संचालन के लिए जरूरी कानून बनाने और स्थानीय जल स्थिति से निपटने के लिए निचले स्तर पर आवश्यक प्राधिकार सौंपे जा सकें। तेजी से बदल रहे हालातों को देखते हुए नई जलनीति बनाई जानी चाहिए। इसमें हर जरूरत के लिए पर्याप्त जल की उपलब्धता और जल प्रदूषित करने वालों को कड़ी सजा का प्रावधान होना चाहिए।

यजनं धर्म देश जाति मर्यादारक्षायै महापुरुषाणामेकीकरणं यज्ञः ॥

अर्थात— श्रेष्ठ पुरुषों को धर्म, देश, जाति, मर्यादा की रक्षा के लिए संगठित एवं एकत्रित करना ही यज्ञ है।

जल की समस्या, आपूर्ति, प्रबंधन तथा दोहन के लिए सरकारी स्तर पर कई संस्थाएँ काम कर रही हैं। राष्ट्रीय जल मिशन तथा जलक्रांति-अभियान अपने-अपने स्तर पर अच्छा काम कर रहे हैं। इस मिशन का उद्देश्य जल-संरक्षण, दुरुपयोग में कमी लाना और विकसित समन्वित जल संसाधन और प्रबंधन द्वारा सभी को समान रूप से जल आपूर्ति सुनिश्चित करना है। यह अभियान गाँवों और शहरी क्षेत्रों में जल प्रबंधन, जनजागरण और आपूर्ति के काम में लगा है।

पानी के महत्त्व को सभी देशों ने पहचाना है। कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, सिंगापुर, अमेरिका जैसे विकसित देश भी अब जल सप्ताह आयोजित करते हैं। जल जीवन का आधार है। जल ही जीवन है। उसको चरितार्थ करने के लिए जनजागरण की आवश्यकता है। जनचेतना ही इस दिशा में सार्थक प्रयास कर सकती है। ❑

शास्त्रों के अनुसार चौरासी लाख योनियों में मनुष्य योनि ही सर्वश्रेष्ठ है। क्यों ? क्योंकि अन्य योनियों जैसे पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि में रहते हुए जीव आत्मोद्धार, आत्मकल्याण, भगवत्प्राप्ति के विषय में न तो सोच सकता है और न ही उसके लिए कोई प्रयास-पुरुषार्थ ही कर सकता है। इसलिए मनुष्य योनि को छोड़कर अन्य योनियों को भोग योनि कहा गया है।

भोग योनि इसलिए; क्योंकि जीव अपने कर्मों के अनुसार पशु-पक्षी, वृक्ष, कीट-पतंग आदि जिस भी योनि को प्राप्त हुआ है, उस योनि में रहकर उस योनि में उपलब्ध भोग पदार्थों का भोग मात्र कर सकता है। वह विषय-भोग, पेट-प्रजनन आदि की पूर्ति के लिए उछल-कूद, दौड़-भाग कर सकता है, पर इससे आगे की नहीं सोच सकता।

इन चीजों से ऊपर उठने की बातें उसके मस्तिष्क में आएँगी ही नहीं; क्योंकि उसके सोच की एक सीमा है, जिससे बाहर वह जा ही नहीं सकता और इस प्रकार वह पशु, पक्षी आदि निम्न योनियों में बार-बार जन्मता हुआ, मरता हुआ अपने कर्मों का भोग ही करता रहता है और विभिन्न योनियों में रहते हुए जब जीव के कर्मों का भोग पूरा हो जाता है, तब आखिरकार जीव को मनुष्य शरीर मिलता है।

इस मनुष्य शरीर में मनुष्य योनि में जीव के पास जन्म-मरण के बंधन से मुक्त होकर, परम आनंद, भगवत्प्राप्ति के बड़े ही दुर्लभ अवसर होते हैं। जीव को विषय-भोगों से संपर्क तो मनुष्य योनि में भी होता है। उसे भौतिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए साधन जुटाने पड़ते हैं, उदरपूर्ति के साधन जुटाने पड़ते हैं, संतानोत्पति आदि कर्मों में भी लिप्त होना पड़ता है, पर अंतर यह है कि मनुष्य योनि में भौतिक जीवन की व्यवस्था करने तक ही स्वयं को सीमित किए रहने की विवशता नहीं है, मजबूरी नहीं है, लाचारी नहीं है। पेट, प्रजनन, परिवार आदि की आवश्यकता पूरी करने के साथ-साथ आत्मोद्धार का मार्ग प्रशस्त कर लेने को उसके पास बड़े ही दुर्लभ अवसर हैं। मानवीय बुद्धि ऐसा सोच-समझ भी सकती है।

मनुष्य अपने आत्मोद्धार के लिए, भगवत्प्राप्ति के लिए चिंतन-मनन कर सकता है, साधन, भजन, ध्यान कर सकता है, स्वाध्याय-सत्संग कर सकता है। अपने लिए इन चीजों की, साधनों की व्यवस्था कर सकता है, जो कि अन्य योनियों में सोच पाना या कर पाना संभव नहीं था। विषय-भोगों को भोगते हुए ही जीवन खतम कर लेना, मनुष्य जीवन का लक्ष्य नहीं है और न ही यह मनुष्य जीवन की गौरव-गरिमा के अनुकूल ही है।

अतः मनुष्य जीवन की पूर्णता इसी में है कि हम भौतिक जीवन को समृद्ध करने के लिए भौतिक पुरुषार्थ तो करें ही, साथ ही आत्मोद्धार के लिए आत्मिक, आध्यात्मिक पुरुषार्थ भी करें; क्योंकि यह मनुष्य योनि भोग योनि नहीं, कर्म योनि है, जिसमें हमें कर्म करने की स्वतंत्रता है। कठिन परिश्रम, पुरुषार्थ, ईमानदारी आदि के द्वारा हम धन-धान्य से संपन्न हो सकते हैं, समृद्ध हो सकते हैं, सुखी जीवन जी सकते हैं, तो वहीं ध्यान, भजन, सत्संग, स्वाध्याय, योग आदि क्रियाओं के निरंतर अभ्यास से आत्मिक आनंद की प्राप्ति भी कर सकते हैं।

पशु-पक्षी आदि योनियों में रहते हुए जीव सिर्फ शरीर के बारे में ही सोच सकता है और शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है, पर मनुष्य योनि में रहते हुए हम मात्र शरीर के बारे में नहीं, शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र के बारे में ही नहीं, बल्कि शरीर में आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित परमात्मा के बारे में भी सोच सकते हैं। हम विचार कर सकते हैं, चिंतन-मनन कर सकते हैं, ध्यान कर सकते हैं, योग कर सकते हैं और अपनी मुक्ति और आनंद का मार्ग भी प्रशस्त कर सकते हैं। हम जीवन-मरण के बंधन से मुक्त हो हमेशा के लिए परम आनंद में अवस्थित हो सकते हैं, पर यदि मनुष्य शरीर प्राप्त कर लेने के बाद भी हमारा जीवन उदरपूर्ति, प्रजननपूर्ति आदि तक ही सीमित रहा तो इससे बड़ी दुर्घटना मानव जीवन के साथ और क्या हो सकती है। इससे अधिक लज्जाजनक, शरमनाक और ग्लानि की बात दूसरी हो ही नहीं सकती।

नाना प्रकार के दुःखों, द्वंद्वों, कष्टों, क्लेशों से मुक्त होकर परम आनंद को प्राप्त करने का मनुष्य शरीर ही तो उत्तम साधन है और मनुष्य जीवन ही उत्तम अवसर भी है। जैसे कुशल किसान उत्तम, अनुकूल मौसम पाकर अपने खेतों में उस मौसम विशेष में उगने वाले बीज, फसल आदि बोकर, लगाकर, उगाकर, अपने को सुखी और समृद्ध कर लेता है, वैसे ही जीव को मनुष्य शरीर में रहते हुए, मानव जीवन जीते हुए सच्चाई के मार्ग पर, आत्मोद्धार के मार्ग पर, बिना विलंब किए चल पड़ना चाहिए; क्योंकि यह मनुष्य शरीर क्षणभंगुर है और यह बड़ी तेजी से मृत्यु की ओर अग्रसर होता जा रहा है। यही उत्तम समय है, अनुकूल मौसम है, आत्मोद्धार के बीज बोने का, परमानंद को पाने का।

मनुष्य योनि में ही आत्मोद्धार संभव है। अस्तु अगर मनुष्य योनि में चूक गए तो उद्धार होना असंभव है। यह जीवन परमात्माप्रदत्त अमूल्य उपहार है। ऐसे दुर्लभ मानव जीवन का हर पल, हर क्षण बड़ा कीमती है, अमूल्य है। यहाँ हर पल बीता जा रहा है। हम मृत्यु की ओर अग्रसर हो रहे हैं। अस्तु आलस्य, प्रमाद आदि को त्यागकर, विषय-भोगों के प्रति आसक्ति को त्यागकर मानव जीवन के परम लक्ष्य की ओर बढ़ चलें और अपने मार्ग पर तब तक चलते रहें, जब तक कि लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए।

हमारे लिए शास्त्रों का भी यही आदेश है कि हम मानव तन पाकर मानव जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त करें। इसी में मानव जीवन की सार्थकता है, सफलता है और गरिमा है। मनुष्य योनि में भी यदि हम पशु योनि की तरह ही जीवन जीते रहे तो फिर मनुष्य के लिए इससे अधिक ग्लानि की बात क्या हो सकती है। पशु-पक्षी आदि योनियों में रहते हुए भी जीव विषय-भोगों में निमग्न रहा, पर उसे उससे कभी तृप्ति प्राप्त नहीं हुई। मनुष्य योनि में विषय-भोगों में निमग्न रहते हुए भी किसी जीव को कभी शाश्वत सुख-शांति की प्राप्ति नहीं हो सकी है। इंद्रियों से मिलने वाले सुख क्षणिक हैं, क्षणभंगुर हैं, पर आत्मा से निस्सृत आनंद शाश्वत है, पूर्ण है।

अतः हमें शाश्वत सुख, सौंदर्य के स्रोत परमपिता परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए, भगवद्भक्ति करनी चाहिए, भगवद्भजन, भगवद्ध्यान करना चाहिए। इसी से हम अपनी आत्मा में सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा की अनुभूति कर सकेंगे। हम प्रेमस्वरूप, आनंदस्वरूप परमात्मा की अनुभूति अपनी आत्मा में कर सकेंगे, सभी प्रकार के कष्ट-क्लेशों से मुक्ति पा सकेंगे और जीवन-मरण के बंधन से भी मुक्त हो परम आनंद में अवस्थित हो सकेंगे। अमूल्य मानव जीवन को सार्थक, सफल बनाने को लेकर हमारे शास्त्रों में बड़े ही प्रेरणादायी सूत्र दिए गए हैं। जैसे—

य एक इत्तमु ष्टुहि। —*ऋग्वेद-6.45.16*

अर्थात जो ईश्वर एक ही है, उसी की स्तुति करो।

त्वमस्माकं तव स्मसि। —*ऋग्वेद-8.92.32*

अर्थात हे प्रभो! तू हमारा है हम तेरे हैं।

त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते। —*ऋग्वेद-1.59.1*

अर्थात हे प्रभो! सब भक्त आपमें आनंद पाते हैं।

तपसा युजा वि जहि शत्रून। —*ऋग्वेद-10.83.3*

अर्थात तप से युक्त होकर सब शत्रुओं अर्थात विघ्न-बाधाओं और काम-क्रोध आदि पर विजय प्राप्त करे।

ओम् प्रतिष्ठ। —*यजुर्वेद-2.13*

अर्थात ईश्वर को अपने हृदय-मंदिर में बैठा लो।

ओम् क्रतो स्मर। —*यजुर्वेद-40.15*

अर्थात हे कर्मशील जीव! तू ॐ (ईश्वर) का स्मरण कर।

यूयमिन्द्रमवृणीध्वम्। —*यजुर्वेद-1.13*

अर्थात हे मनुष्यो! तुम ईश्वर की भक्ति करो, उसको प्राप्त करो।

इयं ते यज्ञिया तनूः। —*यजुर्वेद-4.13*

अर्थात हे मनुष्य! तेरा यह शरीर प्रभुप्राप्ति के लिए है।

कठोपनिषद् *(1.3.14)* का कथन है—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

अर्थात उठो, जागो और वरिष्ठ पुरुषों (ब्रह्मज्ञानियों) को पाकर उनसे बोध प्राप्त करो। वहीं हमारे लिए गीता *(6.5)* में गीताकार का स्पष्ट आदेश है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

अर्थात मनुष्य अपने द्वारा अपना संसार-समुद्र से उद्धार करे और अपने को अधोगति में न डाले; क्योंकि यह मनुष्य आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।

वहीं रामचरितमानस की प्रस्तुत चौपाइयों में मानव जीवन की महत्ता को प्रकाशित करते हुए मानसकार ने कहा है—

एक बार रघुनाथ बोलाए।
गुर द्विज पुरबासी सब आए॥
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन।
बोले बचन भगत भव भंजन॥
सुनहु सकल पुरजन मम बानी।
कहउँ न कछु ममता उर आनी॥
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई।
सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥
बड़ें भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा।
पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोष लगाइ॥
एहि तन कर फल बिषय न भाई।
स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं।
पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥
ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई।
गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥
आकर चारि लच्छ चौरासी।
जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥
नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो।
सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा।
दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥
जौं परलोक इहाँ सुख चहहू।
सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई।
भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥

अर्थात एक बार श्री रघुनाथ के बुलाए हुए गुरु वसिष्ठ, ब्राह्मण और अन्य सब नगर निवासी सभा में आए। जब गुरु, मुनि, ब्राह्मण तथा अन्य सब सज्जन यथायोग्य बैठ गए, तब भक्तों के जन्म-मरण को मिटाने वाले भगवान श्रीराम ये वचन बोले—''हे समस्त नगरवासियो! मेरी बात सुनिए। यह बात मैं हृदय में कुछ ममता लाकर नहीं कहता हूँ और न इसमें कुछ प्रभुता ही है। इसलिए मेरी बातों को सुन लो और यदि तुम्हें अच्छी लगे तो उसके अनुसार करो और वह बात यह है कि बड़े भाग्य से यह मनुष्य शरीर मिला है। सब ग्रंथों में यही कहा है कि यह शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है। यह शरीर साधन का धाम और मोक्ष का दरवाजा है। अत: इसे पाकर भी जिसने परलोक न बना लिया, वह परलोक में दु:ख पाता है, सिर पीट-पीटकर पछताता है तथा इसके लिए स्वयं को दोषी न समझकर वह काल पर, कर्म पर और ईश्वर पर मिथ्या दोष लगाता है।

हे भाई! इस शरीर के प्राप्त होने का फल विषय-भोग नहीं है। इस जगत् के भोगों की तो बात ही क्या, स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है और अंत में दु:ख देने वाला है। अत: जो लोग मनुष्य शरीर पाकर विषयों में मन लगा लेते हैं, वे मूर्ख अमृत के बदले विष ले लेते हैं। जो पारसमणि को खोकर बदले में घुँघची ले लेता है, उसको कभी कोई भला (बुद्धिमान) नहीं कहता। यह अविनाशी जीव चार खानों और चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाता रहता है।

वह माया की प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव और गुण के वश में, प्रभाव में होकर सदा भटकता रहता है। यह मनुष्य शरीर भवसागर से तारने के लिए बेड़ा (जहाज) है। मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है। सद्गुरु इस मजबूत जहाज के कर्णधार (खेने वाले) हैं। इस प्रकार दुर्लभ(कठिनता से मिलने वाले) साधन सुलभ होकर भगवत्कृपा से सहज ही उसे प्राप्त हो गए हैं। जो मनुष्य ऐसे साधन पाकर भी भवसागर से न तरे तो वह कृतघ्न और मंदबुद्धि ही है और ऐसा मनुष्य आत्महत्या करने वाले की गति को प्राप्त होता है।

अत: यदि परलोक में और यहाँ दोनों जगह सुख चाहते हो, तो मेरे वचन सुनकर उन्हें हृदय में दृढ़ता से पकड़े रहो। हे भाई! यह मेरी भक्ति (भगवद्भक्ति) का मार्ग सुलभ है और सुखदायक है। इसे पुराणों और वेदों ने भी गाया है। अस्तु भगवद्भक्ति के द्वारा अपने मानव जीवन को सफल कर लो। इस प्रकार हम देखते हैं कि शास्त्रों में अमूल्य मानव जीवन की महिमा, गरिमा एवं मानव तनरूपी साधन के सहारे, भगवद्भक्ति के द्वारा भगवत्प्राप्ति के सहज, सरल मार्ग का अद्भुत वर्णन है, जो हममें से हरेक के लिए प्रेरणादायी है। ❑

मानव जीवन स्रष्टा की सर्वोत्कृष्ट देन है। उसने हमारे भीतर बहुत कुछ दिव्य, अलौकिक एवं अद्भुत विभूतियाँ, क्षमताएँ बीजरूप में समाविष्ट करके इस धरती पर भेजा है। उन्हें उभारने, विकसित करने एवं पुष्पित-पल्लवित करने के लिए तपश्चर्या की अनिवार्य आवश्यकता होती है।

यों तो भौतिक जीवन में भी अभीष्ट लाभ को प्राप्त करने के लिए पग-पग पर कठिन परिश्रम एवं पुरुषार्थ, अदम्य साहस एवं सुदृढ़ मनोयोग की आवश्यकता होती है। ऐसे में अध्यात्म-क्षेत्र तो उससे भी बढ़कर कठोर श्रम, प्रचंड साहस और एकाग्र मनोयोग की माँग करता है। आत्मिक विभूतियाँ और भौतिक सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए कठोर तप-साधना की अनिवार्य आवश्यकता रहती है। तपस्वी ही शक्तिशाली बनते हैं और उस तप शक्ति के आधार पर साधक ऋद्धि-सिद्धियों के स्वामी बनते हैं।

इतिहास साक्षी है कि महामानवों, ऋषि-मुनियों, तत्त्वदर्शियों एवं देवदूतों के वरदान केवल तपस्वियों के लिए सुरक्षित रहते हैं। पुराणों का प्रत्येक पृष्ठ तप-साधना के द्वारा उपलब्ध विभूतियों की महत्ता प्रतिपादित करता है। धर्मशास्त्रों में तपश्चर्या माहात्म्य को ही विभिन्न प्रकारों और प्रकरणों में गाया गया है। मनुस्मृति में कहा गया है—

यद् दुस्तरं यद् दुरापं यद् दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥

अर्थात जो कुछ दुस्तर, दुष्प्राप्य, दुर्गम और दुष्कर है, उस सबको तपश्चर्या द्वारा साध्य किया जाता है। दुर्भाग्य का अतिक्रमण तप ही करता है।

आध्यात्मिक उन्नति के लिए ही नहीं, वरन भौतिक उन्नति के लिए भी तप की आवश्यकता है। इसके बिना किसी को भी सफलता नहीं मिलती। श्रीरामचरितमानस के बालकांड में नारद जी पार्वती जी को तप करने की सलाह देते हुए कहते हैं कि

तपबल रचइ प्रपंचु बिधाता।
तपबल बिष्नु सकल जग त्राता॥
तपबल संभु करहिं संघारा।
तपबल सेषु धरइ महिभारा॥
तप अधार सब सृष्टि भवानी।
करहि जाइ तपु अस जियँ जानी॥

नारद जी के उपदेश के प्रति आस्था प्रकट करती हुई पार्वती जी कहती हैं—

जन्म कोटि लगि रगर हमारी।
बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥

तप विशुद्ध रूप से एक पुरुषार्थ है। देवताओं और ऋषि-महर्षियों ने जो आत्मबल एवं उच्चपद प्राप्त किया था, उसके पीछे उनकी तपश्चर्यापरक पुरुषार्थपरायणता ही प्रधान रूप से कार्य करती थी। तप से ही दिव्य शक्तियों के धनी देवता प्रसन्न होते हैं। तप से ही वरदान मिलता है।

ब्रह्मा, विष्णु और शिव ने अपनी महत्ता तप बल से ही प्राप्त की है। इंद्रपद तपस्वी को ही मिलता है। अष्टसिद्धि, नवनिधि प्राप्त करना पुरुषार्थी तपस्वियों के लिए ही संभव है। असुरों तक ने तपश्चर्या के बल पर ही अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त कीं। रावण, हिरण्यकशिपु से लेकर बलि तक ने तपश्चर्या के बल पर ऐसी शक्तियाँ प्राप्त कर ली थीं, जिनके बल पर वे तीनों लोकों पर शासन करने की क्षमतासंपन्न बन गए थे।

महाभारत में कहा गया है—

आदित्या वसवो रुद्रास्तथैवाग्नयश्विमारुताः।
विश्वेदेवास्तथा साध्याः पितरोऽथ मरुद्गणाः॥
यक्षराक्षसगन्धर्वाः सिद्धाश्चान्ये दिवौकसः।
संसिद्धास्तपसा तात ये चान्ये स्वर्गवासिनः॥

अर्थात आदित्य, वसु, रुद्र, अग्नि, अश्विनीकुमार, वायु, विश्वेदेवा, साध्य, पितर, मरुद्गण, यक्ष, राक्षस, गंधर्व, सिद्ध, भूलोक के प्रतापी और स्वर्गलोक के देवता तप के द्वारा ही वश में होते हैं।

महाभारत में ही उल्लेख किया गया है—

तपोमूलमिदं सर्वं यन्मां पृच्छसि क्षत्रिय।
तपसा वेदविद्वांसः परं त्वमृतमाप्नुयुः॥

अर्थात हे राजन्! तुम जिस तपस्या के विषय में मुझसे पूछ रहे हो, वही सारे जगत् की मूल है। वेदवेत्ताविद्वान तप द्वारा ही परम अमृत को, मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

श्रीमद्भागवत के अनुसार—

तपसैव परं ज्योतिर्भगवन्तमधोक्षजम्।

अर्थात तप से परम ज्योति का दर्शन होता है। पापों का नाश और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

भगवान मनु कहते हैं कि

तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम्॥
सर्वं तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्॥
तपसैव विशुद्धस्य ब्राह्मणस्य दिवौकसः।

अर्थात तप के द्वारा तीनों लोकों के चराचर का दर्शन होता है। तप से सब कुछ साध्य है और तप से कठिनतम दुरित भी दूर होते हैं। तप से आत्मा का परिष्कार और ब्रह्म से मिलन होता है।

मुंडकोपनिषद् में तप से मिलने वाले प्रतिफल का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः।

अर्थात ज्ञानमय तप वाला सर्वविद्याओं का ज्ञाता और सर्वज्ञ हो जाता है।

आत्मकल्याण के लिए तप-संपदा का उपार्जन आवश्यक होता है; क्योंकि तप द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। ज्ञान से मन का निग्रह होता है। मन स्थिर होने पर आत्मा की प्राप्ति होती है और इस उपलब्धि से बंधन छूट जाते हैं। मैत्रेय उपनिषद् का यही निर्देश है। साधक को तप- साधना के पथ पर ही निरत रहना चाहिए। ❑

एक बार बर्नार्ड शॉ को एक महिला ने रात्रि-भोज पर निमंत्रित किया। अत्यधिक व्यस्त होने के बावजूद उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। व्यस्तता के कारण वे बिना कपड़े बदले ही महिला के घर पहुँच गए। महिला को उन्हें देखकर खुशी हुई, परंतु वह उनके वस्त्र देखकर निराश हो गई और बोली—''आप मोटरगाड़ी में बैठकर जाइए और अच्छे वस्त्र पहनकर आइए।''

बर्नार्ड शॉ तुरंत चले गए और थोड़ी देर बाद कीमती वस्त्र पहनकर लौटे। सब खाना खाने लगे तो सबने देखा कि बर्नार्ड शॉ सभी खाने की चीजों को कपड़ों पर पोत रहे हैं और कह रहे हैं—''खाओ! मेरे कपड़े खाओ, निमंत्रण तुम्हीं को मिला है। तुम्हीं खाओ।''

सब बोल पड़े—''यह आप क्या कर रहे हैं?'' बर्नार्ड शॉ ने कहा—''मैं वही कर रहा हूँ, जो मुझे करना चाहिए। यह निमंत्रण मुझे नहीं, मेरे कपड़ों को मिला है, इसलिए आज का खाना मेरे कपड़े ही खाएँगे।'' उनके यह कहते ही पार्टी में सन्नाटा छा गया। निमंत्रण देने वाली महिला की शरमिंदगी की सीमा न रही। वह समझ चुकी थी कि व्यक्ति का मूल्यांकन उसकी प्रतिभा से होता है, कपड़ों से नहीं।

ब्रह्मवेत्ता माता मदालसा

मदालसा परमज्ञानी एवं ब्रह्मवेत्ता थीं। उनकी कथा अद्भुत है। पुराण कथा के अनुसार काशी में शत्रुजित नामक एक महापराक्रमी राजा शासन करते थे। उनके पुत्र का नाम ऋतुध्वज था। ब्रह्मवादिनी मदालसा इन्हीं ऋतुध्वज की भार्या थीं। वे विश्ववसु गंधर्वराज की पुत्री थीं। इनका ब्रह्मज्ञान जगत् विख्यात है। पुत्रों को पालने में झुलाते-झुलाते इन्होंने ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया था। उन दिनों गालव नाम के तेजस्वी ऋषि महाराज शत्रुजित के राज्य में तपस्या करते थे।

उनकी तपस्या में पातालकेतु नामक एक राक्षस बड़ा ही विघ्न डालता था। जब ऋषि यज्ञ, योग अथवा नित्य-कर्म करते तो पातालकेतु आकर उनको विभिन्न रूपों में परेशान करता था। इससे ऋषि बड़े दुःखी होते। एक दिन किसी देवपुरुष ने ऋषि को एक घोड़ा देते हुए कहा— "भगवन्! आप इस घोड़े को लीजिए, इसका नाम कुवलयाश्व है। यह आकाश, पाताल सब जगह जा सकता है। इसे आप महाराज शत्रुजित के राजकुमार ऋतुध्वज को प्रदान करें। ऋतुध्वज इस पर चढ़कर पातालकेतु तथा अन्यान्य राक्षसों का अंत करेंगे।" इतना कहकर वह देवपुरुष चला गया। ऋषि घोड़े को लेकर महाराज शत्रुजित के समीप आए।

ऋषि को अपने सामने उपस्थित देखकर महाराज ने उनका भावपूर्वक स्वागत-सत्कार किया और आने का कारण पूछा। ऋषि ने सारा वृत्तांत कह सुनाया और वह कुवलयाश्व महाराज को प्रदान कर दिया। पहले तो महाराज राजकुमार की कोमलता और बालपन को देखकर विचार करने लगे। दैवी आदेश और ऋषि की आज्ञा समझकर उन्होंने कहा— "पुत्र! तुम ऋषि की आज्ञा से इस अश्व पर चढ़कर ऋषि के आश्रम पर जाओ और दुष्ट पातालकेतु का विनाश करो।"

पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करके राजकुमार घोड़े पर चढ़कर ऋषि के आश्रम पहुँचे। उस समय पातालकेतु शूकर के वेष में आश्रम के समीप ही घूम रहा था। राजकुमार ने उसके पीछे अपना घोड़ा दौड़ाया। पातालकेतु दौड़ते-दौड़ते एक गुफा में घुस गया, कुवलयाश्व भी उसके साथ ही उस गुफा में घुस गया। राजकुमार ने वहाँ एक बड़ा सुंदर नगर देखा। शूकर बना पातालकेतु वहाँ विलुप्त हो गया। राजकुमार भ्रमित हो गए।

राजकुमार गुफा के भीतर-ही-भीतर चल पड़े। वहाँ उन्हें एक परम सुंदरी राजकुमारी दिखाई पड़ी। वह निराश और उदास बैठी थी। राजकुमार का उस पर सहज स्नेह हो गया। राजकुमारी की सखी ने बताया—"ये गंधर्वराज विश्ववसु की पुत्री हैं। राक्षस इन्हें चुराकर यहाँ ले आया है और इनके साथ विवाह करना चाहता है, किंतु इन्होंने अपना विवाह राजकुमार ऋतुध्वज से करना निश्चय किया है।"

राजकुमार ने राजकुमारी को अपना परिचय दिया। नारद जी की सहायता से वहीं मदालसा और ऋतुध्वज का गंधर्व विवाह हो गया। उन्होंने फिर पातालकेतु का वध किया। मदालसा को लेकर राजकुमार अपनी राजधानी में पधारे। महाराज तथा प्रजा ने कुमार और नववधू का हृदय से स्वागत किया। राजकुमार मदालसा के साथ सुखपूर्वक रहने लगे। एक बार महाराज ने राजकुमार से कहा—"पुत्र! तुम्हारे पास कुवलयाश्व है। जाओ राज्य में घूमो, जहाँ राक्षस हों, उनका विनाश करो। दुष्टों को दंड दो, ऋषियों को सुख पहुँचाओ।"

महाराज की आज्ञा शिरोधार्य करके राजकुमार अपने अश्व पर चढ़कर राज्य में घूमते रहे। पातालकेतु का एक भाई मायावी तालकेतु था। उसने ब्राह्मण का रूप धारण कर छलपूर्वक राजकुमार से एक मणि माँग ली। वह वृद्ध ब्राह्मण के रूप में महाराज शत्रुजित की राजधानी में पहुँचा। उसने वहाँ बताया कि कुमार एक राक्षस के साथ लड़ते-लड़ते स्वर्ग सिधार गए। इस समाचार से सब लोग बड़े दुःखी हुए। मदालसा ने भी अग्नि में प्रवेश किया। पीछे जब ऋतुध्वज आए और उन्होंने अपनी पत्नी की यह दशा सुनी तो वे घोर तप करने लगे। शिव जी की कृपा से कुमार को मदालसा मिल गईं और राजकुमार सुखपूर्वक रहने लगे।

कालांतर में महाराज शत्रुजित स्वर्गवासी हुए। ऋतुध्वज का राज्याभिषेक हुआ। उनके तीन पुत्र हुए, जिनके नाम विक्रांत, सुबाहु और अरिमर्दन थे। तीनों को महारानी ने

बाल्यकाल में ही ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिया और वे तीनों ही संसार-त्यागी, संन्यासी बन गए। जब चौथे पुत्र अलर्क को भी महारानी ब्रह्मज्ञान सिखाने लगीं तो राजा ने कहा—"देवी! इस राज्य को कौन सँभालेगा? इसे संसार के योग्य रहने दो।"

रानी ने उनकी बात मान ली। अलर्क राजा हुए और उन्होंने गंगा-यमुना के संगम पर अपनी अलर्कपुरी नाम की राजधानी बनाई, जो आजकल अरैल के नाम से प्रसिद्ध है। मदालसा ने उसे एक उपदेश लिखकर दिया और कहा—"कोई कठिन विपदा आए, तब इसे खोलना।" एक बार राज्य पर किसी अन्य राजा ने चढ़ाई की। इसे विपत्ति समझकर अलर्क ने माता के पत्र को खोला, उसमें ब्रह्मज्ञान का उपदेश था। महाराज उसी समय अपना राज्य उस राजा को सुपुर्द करके वन को चले गए। इस प्रकार योग्य माता मदालसा ने अपने चारों पुत्रों को ब्रह्मज्ञानी बना दिया। धन्य हैं ऐसी ब्रह्मवादिनी माता और धन्य है ऐसी भारतभूमि, जहाँ ऐसी-ऐसी माताएँ उत्पन्न हुईं।

माता मदालसा अपने पुत्रों को उपदेश देती थीं। वे कहती थीं—"हे पुत्र! तुम विशुद्ध एवं दिव्य आत्मा हो। तुम्हारा कोई नाम नहीं है। इस शरीर को धारण करने के लिए तुम्हें एक कल्पित नाम प्रदान किया गया है। तुम शुद्ध-बुद्ध आत्मा हो जो किसी भी नाम, रूप से परे है। तुम संसार में रहते हुए भी आत्मा में रमण करो। संसार कर्त्तव्य का स्थान है। यहाँ कर्त्तव्य करो और निकल जाओ। प्रेम तो केवल परमात्मा से करो, संसार से नहीं।" मदालसा के इस ब्रह्मज्ञान से उसके तीन पुत्र ब्रह्मवेत्ता बने और चौथा पुत्र भी राज्य का पदभार ग्रहण करने के बाद नियत समय पर ब्रह्मज्ञानी बन गया। आज ऐसी ब्रह्मवादिनी माताओं की आवश्यकता है, जो अपनी संतानों को श्रेष्ठ शिक्षा एवं विद्या प्रदान कर सकें। ❑

एक सेठ जी ने निश्चय किया कि वह एक समझदार लड़की को ही अपनी पुत्रवधू बनाएँगे। सेठ जब भी किसी लड़की को देखने जाते तो प्रश्न करते कि सरदी, गरमी और बरसात में सबसे अच्छा मौसम कौन-सा है? एक लड़की ने उत्तर दिया—"गरमी का मौसम सबसे अच्छा है। उसमें हम पहाड़ पर घूमने जाते हैं। सुबह-सुबह टहलने में बहुत सुख मिलता है।" दूसरी लड़की ने कहा—"जाड़े का मौसम सबसे अच्छा होता है। इस मौसम में तरह-तरह के पकवान बनते हैं। हम जो भी खाते हैं, सब आसानी से पच जाता है। गरम कपड़ों का अपना ही सुख है।" तीसरी लड़की ने कहा—"मुझे तो वर्षा ऋतु पसंद है। इस मौसम में पृथ्वी पर चारों ओर हरियाली होती है। बारिश में भीगने में बहुत मजा आता है।" सेठ जी इन लड़कियों के जवाबों से संतुष्ट नहीं हुए और निराश हो गए। उन्होंने लड़कियाँ देखना बंद कर दिया। तभी अचानक एक मित्र के यहाँ उनकी मुलाकात एक लड़की से हुई। उन्होंने उससे वही प्रश्न दोहराया। लड़की बोली—"शरीर व मन स्वस्थ हैं, तो सभी मौसम अच्छे हैं। यदि हमारा तन-मन स्वस्थ नहीं, तो हर मौसम बेकार है।" सेठ जी इस उत्तर से बेहद प्रभावित हुए। उन्होंने उस लड़की को अपनी पुत्रवधू बना लिया।
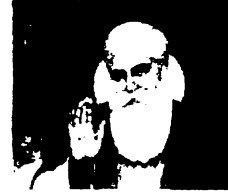
गुरु नानक देव ज्ञान का अमृत लिए हमेशा भ्रमण किया करते थे। वे जहाँ भी जाते लोगों को ज्ञान का अमृत पिलाते, लोगों को बुराई छोड़कर ईश्वरभक्ति की प्रेरणा देते। एक बार भ्रमण करते हुए गुरु नानक देव बनारस की ओर चल पड़े।

बनारस पहुँचकर उन्होंने गंगास्नान किया, भजन-पूजन, ध्यान किया। बनारस विद्वानों का गढ़ था। उन्हीं विद्वान पंडितों में से एक पंडित चतुरदास गंगा किनारे बैठे थे। सहसा उनकी नजर ध्यान में बैठे गुरु नानक देव पर पड़ी।

वे गुरु नानक देव के रूप में एक अजनबी साधु को देखकर हैरान हुए, फिर वे गुरु नानक देव के पास जाकर बोले—''महात्मा! आप कैसे साधु हैं, जिनके पास न माला है, न तुलसी की माला गले में डाली है, न ही आपके पास शालग्राम हैं।''

इस पर गुरु नानक देव हँसे और बोले—''हे ब्राह्मण! तुम ईश्वर को शालग्राम बनाओ, शुभ कर्मों को तुलसी की माला समझो, और जन-जन में अभिव्यक्त हो रहे विराट ईश्वर की सेवा करो, तभी दयालु ईश्वर की तुम पर दया होगी।''

ब्राह्मण ने कहा—''आप जो कहते हैं, वह ठीक हो सकता है पर काम, क्रोध, लोभ, मोह से भरे मन पर कैसे विजय पाई जा सकती है और यदि उस पर विजय पाई न जाए, तब जन-जन में विराट ईश्वर को अभिव्यक्त होते हुए देखना और ईश्वर भाव से जीव की सेवा करना कहाँ संभव है?''

तब गुरु नानक देव बोले—''अपने मन-मंदिर में ईश्वरभक्ति की गुड़ाई करो, जुताई करो। फिर जैसे-जैसे यह मन-मंदिर की धरती उपजाऊ होगी, वैसे-वैसे मनोभूमि में ज्ञान जन्म लेगा। फिर उस ज्ञान के खुरपे से काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार को खतम कर सकोगे।''

इस पर उस ब्राह्मण ने पूछा—''हे साधु! क्या वेदों और शास्त्रों के अध्ययन के बिना ज्ञान प्राप्त हो सकता है?'' इस पर गुरु नानक देव बोले—''ब्राह्मण देवता! केवल वेद-शास्त्र पढ़ने मात्र से प्रभु नहीं मिल सकते। प्रभु तो आपकी आत्मा के अंदर हैं। यदि आपकी आत्मा पर अंधकार छाया हुआ है तो ज्ञान का प्रकाश कहाँ से आएगा? यह ज्ञानरूपी प्रकाश मनुष्य की आत्मा से पैदा होता है, पुस्तकें पढ़ने से नहीं। इसलिए हाँ! शास्त्रों में जो कुछ लिखा है, उसे अपने जीवन में जीने का, उतारने का अभ्यास अवश्य ही करना चाहिए, वरना शास्त्रों को पढ़ने मात्र से क्या लाभ? मनुष्य को इस संसार में आसक्त नहीं निर्लिप्त रहना चाहिए।''

ब्राह्मण ने पूछा—''पर संसार में निर्लिप्त कैसे रहा जा सकता है?'' गुरु नानक देव बोले—''क्या आप नहीं जानते कि प्रफुल्लित वनस्पति में भी अग्नि होती है। धरती सागर से घिरी रहती है, परंतु फिर भी धरती बह तो नहीं जाती। वह अपने ऊपर नदियों को, सागर को बहने देती है, पर स्वयं बहती नहीं, बल्कि उसके बहाव से निर्लिप्त रहती है। सूर्य और चंद्र एक ही आकाश में रहते हैं, परंतु दोनों के गुण अलग-अलग हैं। इसलिए मनुष्य आशा-तृष्णा के बीच में रहता हुआ भी इनसे निर्लिप्त रह सकता है।''

''ब्रह्मज्ञानी के क्या लक्षण हैं?'' पंडित जी ने फिर प्रश्न किया। तब गुरु नानक देव बोले—''जो ईश्वर को सर्वव्यापी समझता है और चारों ओर से घेरने वाली माया को काट देता है, वह ब्रह्मज्ञानी है। ब्रह्मज्ञानी का यह भी लक्षण है कि वह सदा क्षमारूपी धन का संग्रह करता है।'' ''फिर ईश्वरप्राप्ति कैसे हो?'' पंडित जी ने फिर प्रश्न किया। तब गुरु नानक देव बोले—''केवल एक ही मार्ग है और वह है ईश्वरप्रेम। जो ईश्वर से प्रेम करता है, उसमें द्वेष-भाव नहीं होता। वह सभी को एक समान समझता है। यह माया उसे नहीं मोहती। वह अपने आप में संतुष्ट रहता है।''

पंडित चतुरदास जी गुरु नानक देव की ज्ञान भरी बातें सुनकर बहुत प्रभावित हुए। उनके मन की सारी शंकाएँ दूर हो गईं। वे गुरु नानक देव के शिष्य बन गए और उनसे ज्ञान प्राप्त करते रहे। ❑

मानव जीवन का आधार-संवेदना

संवेदना मनुष्य जीवन का आधार है। संवेदनहीन मनुष्य पशुवत् होता है और संवेदनशीलता मनुष्य में देवत्व का अभिवर्द्धन करती है। उच्च भावनाओं के आधार पर वह देवता बन जाता है, तुच्छ विचारों के कारण वह पशु दिखाई पड़ता और निकृष्ट, पापबुद्धि को अपनाकर वह असुर एवं पिशाच बन जाता है।

कोई व्यक्ति अच्छा या बुरा तभी तक रह सकता है, जब तक कि उसकी सद्बुद्धि क्रियाशील रहे। पाप बुद्धि के प्रकोप से यदि मनुष्य सँभल न सके तो वह स्वयं तो अंधकार के गर्त में गिरता ही है साथ ही वह दूसरे अनेकों को अपने साथ पापपंक में ले डूबता है। विश्वामित्र ऋषि को प्रलोभन भाया तो वे मेनका के जाल में फँस गए।

पराशर केवट कन्या पर मोहित हो गए और अपने को सँभाले न रह सके। चंद्रमा ने गुरु की पत्नीगमन का पाप ढोया और इंद्र जैसे देवता अहल्या का सतीत्व नष्ट करने के कुकर्म में प्रवृत्त हुए। भीष्म और द्रोणाचार्य जैसे विवेकशील भी दुर्योधन की अनीति का समर्थन करने लगे।

दूसरी ओर सद्बुद्धि के जाग्रत होने पर फतेसिंह, जोरावर जैसे छोटे-छोटे बालक दीवार में जीवित चुने जाना हँसी-खुशी स्वीकार कर गए। चोटी न कटने देने के बदले बोटी-बोटी कटवाने को प्रसन्नतापूर्वक तैयार हुए हैं। स्वतंत्रता संग्राम के सैनिक बनकर असंख्य व्यक्ति सब प्रकार की बरबादी सहन कर गए और फाँसी के तख्तों पर गीता की पुस्तकें छाती से चिपकाए हुए चढ़ गए।

राम की सेना में रीछ-बंदर जैसे दुर्बल प्राणी भी अपने प्राणों की आहुति देने के लिए सम्मिलित हुए। एक छोटी गिलहरी तक अपने ऊपर धूल भर-भरकर उसे समुद्र में झाड़ देने का अनवरत श्रम करके समुद्र को उथला करके राम की सेना का मार्ग प्रशस्त करने का प्रयास करती दिखाई पड़ी। ये सब सद्बुद्धि के जागरण के उदाहरण हैं।

सद्बुद्धि से दुर्बल व्यक्तियों में हजार हाथियों का बल आ जाता है, पर स्वार्थी बुद्धि तो सेनापतियों को भी कायर बना देती है। द्रौपदी को भरी सभा में नग्न किए जाते समय भीष्म और द्रोण जैसे योद्धा नपुंसक बने बैठे रहे। उस समय उनके मुख से एक शब्द भी विरोध का नहीं निकला।

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई सहायता और आश्रय प्राप्त करने के लिए समर्थ राजाओं के पास गई, पर अँगरेजों के डर से उन सभी ने सहायता देने से साफ इनकार कर दिया। कितने ही भारतीय अपनी स्वार्थ बुद्धि के कारण अँगरेज और मुगलों के प्रिय बने रहे और देश को गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ देखते रहे।

जहाँ राणा प्रताप और शिवाजी जैसे स्वाभिमानी जीवन भर भारतीय स्वतंत्रता के लिए तिल-तिल लड़ते रहे तो वहीं अपने राज्य-राष्ट्र के बदले अपने लिए सुविधाएँ प्राप्त करने वाले भी कम नहीं थे। राणा सांगा 84 घाव होने पर भी युद्ध करते रहे, पर दूसरे लोग शत्रु से मिलकर अपना स्वार्थ साधने में लगे रहे।

इस लोक में जो कुछ सुख-शांति, समृद्धि और प्रगति दिखाई पड़ती है, वह सब सद्भावनाओं और सत्प्रवृत्तियों का परिचय है और जितनी भी उलझनें, पीड़ाएँ और कठिनाइयाँ दिखती हैं, उनके मूल में दुर्बुद्धि का विष-बीज फलता-फूलता रहता है।

सैकड़ों-हजारों वर्ष बीत जाने पर भी पुरानी ऐतिहासिक इमारतें लोहे की चट्टान की तरह आज भी अडिग खड़ी हैं, पर हमारे बनाए हुए बाँध, स्कूल, पुल, इधर बनकर तैयार नहीं हो पाते कि उधर बिखरने शुरू हो जाते हैं।

आज सामान और ज्ञान दोनों ही पहले की अपेक्षा अधिक उच्चकोटि के हैं, पर उस लगन की कमी दिखाई पड़ती है, जिसके कारण प्राचीनकाल में लोग स्वल्प साधन होते हुए भी बड़ी-बड़ी मजबूत इमारतें बना देते थे। कुतुबमीनार, ताजमहल, आबू के जैन मंदिर, मीनाक्षी के

देवालय, अजंता की गुफाएँ, मिस्र के पिरामिड और चीन की दीवार मात्र बौद्धिक ज्ञान का नहीं, उत्कृष्ट वस्तु निर्माण करने की भावना का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

मशीनों, कारखानों, नहर, बाँध और सड़कों के आधार पर हमारी सुख-शांति नहीं बढ़ सकती। इनसे थोड़ी आमदनी बढ़ सकती है, पर उसी बढ़ी आमदनी से अनर्थ ही बढ़ने वाला है। देखा जाता है कि कारखानों के मजदूर और दूसरे श्रमिक सारा पैसा शराब, तंबाकू, सिनेमा आदि में खरच कर डालते हैं।

आमदनी बढ़ती चलने पर तरह-तरह की फजूलखर्ची के साधन बढ़ते जाते हैं। जिन्हें ऊँची तनख्वाहें मिलती हैं, वे भी अभाव और कमी का रोना रोते रहते हैं। धनी लोगों का व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक जीवन क्लेश और द्वेष से भरा रहता है। पैसे के साथ-साथ दुर्गुण बढ़ते चलने पर वह दौलत, विपत्ति का कारण बनती चलती है।

आर्थिक उन्नति के साथ-साथ विवेकशीलता और सत्प्रवृत्तियों की अभिवृद्धि भी अवश्य होनी चाहिए। यदि इस दिशा में उपेक्षा बरती गई तो प्रगति के लिए आर्थिक सुविधा बढ़ाने के जो प्रयत्न किए जा रहे हैं, वे हमारी समस्याओं को सुलझा सकने में कदापि समर्थ न हो सकेंगे। जब तक मजदूर ईमानदारी से काम न करेंगे, तब तक कोई कारखाना पनप न सकेगा। जब तक चीजें अच्छी और मजबूत न बनेंगी, उनसे किसी खरीदने वाले को लाभ न मिलेगा।

जब तक खरीदने वाले और व्यापारी मिलावट, कम तौल-नाप, मुनाफाखोरी न छोड़ेंगे, तब तक व्यापार की स्थिति दयनीय ही बनी रहेगी। सरकारी कर्मचारी जब तक अहंकार, रिश्वत, कामचोरी और घोटाला करने की प्रवृत्ति न छोड़ेंगे तब तक शासनतंत्र का उद्देश्य पूरा न होगा।

सत्प्रवृत्तियाँ इन वर्गों में अभी उतनी नहीं दिखाई देतीं, जितनी दिखनी चाहिए। यही कारण है कि हमारी प्रगति अवरुद्ध बनी पड़ी है। साधनों की कमी नहीं है। आज जितना ज्ञान, धन और श्रम-साधन अपने पास मौजूद हैं, उनका सदुपयोग होने लगे तो सुख-सुविधाओं में कई गुना अभिवृद्धि हो सकती है।

आत्मकल्याण की लक्ष्यपूर्ति तो सर्वथा सत्प्रवृत्तियों पर ही निर्भर है। ईश्वर का साक्षात्कार, स्वर्ग एवं मुक्ति को प्राप्त कर सकना, केवल उन्हीं के लिए संभव है, जिनके विचार और कार्य उच्चकोटि के आदर्शवादी एवं परमार्थपरक भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। कुकर्मी और पापवृत्तियों में डूबे हुए लोग चाहे कितना ही धार्मिक कर्मकांड क्यों न करते रहें, कितना ही भजन-पूजन क्यों न कर लें, उन्हें ईश्वर के दरबार में प्रवेश नहीं मिल सकेगा।

भगवान घट-घट वासी हैं, वे भावनाओं को परखते हैं और हमारी प्रवृत्तियों को भली प्रकार जानते हैं, उन्हें किसी बाह्य उपचार से बहकाया नहीं जा सकता। वे किसी पर तभी कृपा करते हैं, जब वे उसकी भावना की उत्कृष्टता को परख लेते हैं। उन्हें भजन से अधिक भाव प्यारा है। भावनाशील व्यक्ति बिना भजन के भी ईश्वर को प्राप्त कर सकता है, पर भावना से विहीन व्यक्ति के लिए केवल भजन के बल पर लक्ष्यप्राप्ति संभव नहीं हो सकती।

परं द्वेष्टि परेषां यदात्मनस्तद् भविष्यति।
परेषां क्लेदनं कर्म न कार्यं तत्कदाचन॥

अर्थात दूसरों के साथ जैसा व्यवहार किया जाता है, वही अपने लिए फलित होता है। अतः ऐसा कर्म कभी नहीं करना चाहिए, जो दूसरों को कष्ट देने वाला हो।

लौकिक और पारलौकिक, भौतिक और आत्मिक कल्याण के लिए उत्कृष्ट भावनाओं की अभिवृद्धि नितांत आवश्यक है। प्राचीनकाल में जब भी अनर्थकारी समय आए हैं, तब उनका कारण मनुष्य की स्वार्थपरता एवं पापबुद्धि ही रही है और जब भी सुख-शांति का आनंदमय वातावरण रहा है, तब उनके पीछे सद्भावनाओं का बाहुल्य ही मूल कारण रहा है।

आज भी हमारे लिए वही मार्ग शेष है। इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग न पहले था और न आगे रहेगा। हमें वर्तमान दुर्दशा से ऊँचा उठने के लिए जनमानस में गहराई तक सद्बुद्धि की स्थापना करनी होगी। इसी आधार पर विश्वव्यापी सुख-शांति का वातावरण बना पाना संभव होगा। संवेदना ही इसका एकमात्र आधार हो सकती है। ❑

ध्यान मन का मौन है। मन का मौन हो जाना ही ध्यान है। मन का मिट जाना ही ध्यान है। मन का हमेशा-हमेशा के लिए रुक जाना, ठहर जाना ही ध्यान है। मन का ऐसा मौन अस्थायी नहीं, स्थायी होता है। इसलिए यह मौन मरण है, मृत्यु है मन की और मन का ऐसा मौन, ऐसा मरण ही ध्यान है। मन की मृत्यु ही ध्यान है।

अचेतन मन व्यक्ति के कर्म-संस्कारों, अच्छे-बुरे अनुभवों, स्मृतियों का भांडागार है। हमारा अचेतन मन हमारे द्वारा किए गए अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य आदि कर्मों के संस्कारों का बसेरा है। अचेतन के इन्हीं संस्कारों के शोर-शराबों से हमारा चित्त चंचल होता है। इसलिए ऊपर से शांत दिखते हुए भी हम अंदर से अशांत होते हैं।

हमारे मन में रह-रहकर शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य आदि विचारों के तूफान उठते ही रहते हैं। फलस्वरूप हम अशांत, उद्विग्न, हताश और निराश होते हैं। हम आशा-निराशा, मान-अपमान, हानि-लाभ, यश-अपयश, हर्ष-विषाद, सुख-दु:ख आदि के सुखद-दु:खद थपेड़े खाते ही रहते हैं और जब तक हम इन थपेड़ों के बीच हैं, झंझावातों के बीच पड़े हुए हैं, घिरे हुए हैं तब तक हमारे भीतर हाहाकार मचे ही रहेंगे। हमारे भीतर अशांति बनी ही रहेगी।

यदि हम अपने अचेतन मन का पूर्णत: परिमार्जन कर लें, परिष्कार कर लें तब हम आशा-निराशा, मान-अपमान, हानि-लाभ, जीवन-मरण, सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद से ऊपर उठकर, उनसे परे जाकर, उन सबसे अप्रभावित रहकर सदा आनंद, शाश्वत सुख व शांति में स्थित हो सकते हैं, स्थितप्रज्ञ हो सकते हैं, पर ऐसा हो कैसे?

हम सगुण-निर्गुण किसी भी प्रकार के ध्यान के निरंतर अभ्यास से इस स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए ही हमें अपने अचेतन के संस्कारों को हमेशा के लिए शांत कर देना है, समाप्त कर देना है।

इन संस्कारों का सदा के लिए मौन हो जाना, शाश्वत सुख-शांति व आनंद प्राप्ति के लिए आवश्यक है और इन संस्कारों को सदा के लिए मौन हो जाने देने की प्रक्रिया ही ध्यान है। ध्यान में उतरकर ही हम अपने भीतर के शोर-शराबे, कोलाहल को समाप्त कर सकते हैं, उसके मूलस्रोत को नष्ट कर सकते हैं। हमारे अंदर उठने वाले सारे तूफान, सारे प्रश्न, सारे विचार जो हमें बार-बार विचलित करते हैं, वे ध्यान से ही हमेशा-हमेशा के लिए शांत और समाप्त हो सकते हैं।

इस शांत-प्रशांत अवस्था में ही हम अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त कर परम आनंद में स्थित हो सकते हैं। हम ध्यान के निरंतर अभ्यास से निश्चित ही अपने भीतर स्थित आनंद को प्राप्त कर सकते हैं। वैसे ही, जैसे ध्यान के निरंतर अभ्यास से बुद्ध के शिष्यों ने परम आनंद की प्राप्ति की थी। इस संबंध में एक बहुत ही रोचक कथा है। एक बार मौलुंकपुत्र नाम का एक विद्वान जिज्ञासु अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ महात्मा गौतम बुद्ध के पास पहुँचा। उस विद्वान के पास बहुत सारे प्रश्न थे, ढेर सारी जिज्ञासाएँ थीं।

बुद्ध ने उस जिज्ञासु ब्राह्मण के चेहरे की तरफ देखा और कहा—"मौलुंकपुत्र! मैं तुम्हारे भीतर उठते प्रश्नों को देख सकता हूँ। मैं तुम्हारे भीतर उठ रहे प्रश्नों के बवंडर और उससे उत्पन्न तुम्हारी परेशानी को देख सकता हूँ। मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे सकता हूँ, पर एक शर्त है।" "क्या शर्त है प्रभु?" मौलुंकपुत्र ने पूछा। बुद्ध बोले—"तुम यहाँ रहकर एक वर्ष तक प्रतीक्षा करो, ध्यान करो और मौन रहो यदि तुम यह शर्त पूरी करो, केवल तभी मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दे सकता हूँ। तुम्हारी परेशानियों का समाधान बता सकता हूँ। अभी तुम्हारे भीतर कोलाहल, शोर-शराबा है। अभी मैं कुछ बताऊँ तो भी तुम उसे समझ नहीं पाओगे। इसलिए जब तुम्हारे भीतर का शोरगुल समाप्त हो जाए, जब तुम्हारे भीतर की बातचीत रुक जाए, तब तुम कुछ भी पूछना और मैं उत्तर दूँगा। मैं यह वचन देता हूँ।"

मौलुंकपुत्र कुछ चिंतित हुआ; क्योंकि एक वर्ष तक निरंतर ध्यान करना, मौन रहना और तब जाकर अपने प्रश्नों का उत्तर पाना। यह उसे जँच नहीं रहा था और इसलिए वह मन-ही-मन सोच रहा था कि कौन जाने वे एक वर्ष बाद

भी उत्तर दें या न दें और यदि उसके प्रश्नों का उत्तर दें तो उनके उत्तर सही ही हों, यह भी तो जरूरी नहीं? तब हो सकता है उसका एक वर्ष बिलकुल ही बेकार हो जाए। उनके दिए उत्तर व्यर्थ भी तो हो सकते हैं? फिर क्या करना चाहिए?

वह दुविधा में पड़ गया। वह शर्त मानने में झिझक भी रहा था। वह इसी उधेड़बुन में था कि तभी उसकी बगल में बैठा गौतम बुद्ध का एक शिष्य सारिपुत्र जोर से हँसने लगा। वह वहीं पास में ही बैठा था। वह एकदम खिलखिलाकर हँसने लगा। उसे ऐसे हँसते देखकर मौलुंकपुत्र और भी परेशान हो गया। उसने सारिपुत्र से पूछा—''बात क्या है? तुम आखिर हँस क्यों रहे हो?'' सारिपुत्र ने कहा—''तुम तथागत की बातें मत सुनो।'' ''क्यों?'' मौलुंकपुत्र ने प्रश्न किया।

सारिपुत्र ने कहा—''जब मैं यहाँ आया था तथागत ने मुझसे भी यही बातें कही थीं कि तुम एक वर्ष यहीं ठहरो, ध्यान करो, मौन रहो और फिर मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर दूँगा। तुम्हारे तो केवल पाँच सौ शिष्य हैं, पर मेरे साथ तो मेरे पाँच हजार शिष्य थे। मैं बहुत सम्मानित ब्राह्मण था। मेरी बड़ी ख्याति थी। इन्होंने मुझे फुसला लिया। इन्होंने कहा कि साल भर प्रतीक्षा करो। मौन रहो। ध्यान करो, फिर पूछना, मैं उत्तर दूँगा और साल भर बाद कोई प्रश्न ही नहीं बचा तो मैंने कभी कुछ पूछा ही नहीं और इन्होंने कोई उत्तर दिया ही नहीं। यदि तुम पूछना चाहते हो तो अभी पूछ लो; क्योंकि साल भर बाद तुम पूछ न सकोगे।''

अंततः अंतःप्रेरणा से मौलुंकपुत्र ने बुद्ध के वचनों पर भरोसा करके एक वर्ष तक प्रतीक्षा करने का निर्णय ले लिया। बुद्ध ने फिर कहा—''मैं अपने वचन पर पक्का रहूँगा, यदि साल भर बाद तुम प्रश्न पूछते हो तो मैं उत्तर अवश्य दूँगा, पर यदि तुम पूछो ही नहीं, तो मैं क्या कर सकता हूँ?''

मौलुंकपुत्र वहीं ठहर गया। उसका मौन प्रारंभ हुआ। ध्यान प्रारंभ हुआ। धीरे-धीरे ध्यान ने उसके चित्त के संस्कारों को समाप्त करना प्रारंभ कर दिया। ध्यान में वह डूबता गया, उतरता गया। धीरे-धीरे मन स्वतः ही मौन होता गया। भीतर की हलचल, कोलाहल धीरे-धीरे शांत होने लगी, समाप्त होने लगी। चित्त के संस्कार क्षीण होते गए, लुप्त होते गए, विलुप्त होते गए और अंततः वह स्थिति आई कि उसका चित्त निर्विकार, निर्विचार, शुद्ध, बुद्ध अवस्था को प्राप्त होने लगा। मन से सारे प्रश्न, सारे विकार, सारे विचार, सारे संस्कार ऐसे झड़ते गए, जैसे पतझड़ में वृक्ष की डाली से पत्ते झड़ते जाते हैं।

इस प्रकार ध्यान व मौन के निरंतर अभ्यास में एक वर्ष कैसे बीत गया, मौलुंकपुत्र को इसका पता भी न चला, पर अब बुद्ध से प्रश्न कौन करे? क्योंकि उसके मन में प्रश्न तो रहे ही नहीं, विकार, विचार, संस्कार रहे ही नहीं, कोलाहल, शोर-शराबा रहा ही नहीं। फिर कौन और क्या प्रश्न करे? और इसकी फिक्र भी कौन करे? जब प्रश्न ही न रहे, तो उत्तरों की फिक्र ही कौन और क्यों करे?

तब एक दिन अचानक स्वयं बुद्ध ने ही पूछा—''वत्स! यह वर्ष का अंतिम दिन है। इसी दिन तुम एक वर्ष पहले यहाँ आए थे और मैंने तुम्हें वचन दिया था कि एक वर्ष बाद तुम जो भी प्रश्न पूछोगे, जिज्ञासाएँ व्यक्त क़रोगे, मैं उत्तर दूँगा। मैं उत्तर देने को तैयार हूँ। अब तुम प्रश्न पूछो।''

मौलुंकपुत्र हँसने लगा और कहा—''प्रभु आपने मुझे भी फुसला लिया, बहला दिया। एक वर्ष बाद समझ में आया कि आपने मुझे यहाँ एक वर्ष तक रुकने को क्यों कहा, ध्यान करने को क्यों कहा, मौन रहने को क्यों कहा। वह सारिपुत्र ठीक ही कहता था। अब पूछने के लिए मेरे पास कोई प्रश्न रहा ही नहीं। फिर मैं क्या पूछूँ? मेरे पास पूछने के लिए कुछ भी नहीं है। हे प्रभु! आपने मुझे यहाँ एक वर्ष रुकने को कहकर जो मेरे ऊपर अनुग्रह किया है, उसके लिए मैं आपका हमेशा ही ऋणी रहने वाला हूँ।''

तब बुद्ध बोले—''असल में यदि तुम सत्य नहीं हो तो ही समस्याएँ होती हैं और प्रश्न होते हैं। प्रश्न तुम्हारे झूठ से पैदा होते हैं, तुम्हारे स्वप्न, तुम्हारी नींद से वे पैदा होते हैं। जब तुम सत्य होते हो, प्रामाणिक होते हो, निर्मल होते हो, ध्यानस्थ होते हो तो सारे प्रश्न तिरोहित हो जाते हैं।''

वे आगे बोले—''यदि तुम्हारे भीतर प्रश्न उठने बंद हो गए हैं तो मुझे उत्तर देने की जरूरत नहीं है। तुम्हें उत्तर स्वयं ही मिल गए हैं। ध्यान में, मौन में रहकर ही मन की ऐसी अवस्था उपलब्ध होती है, जहाँ प्रश्न उठते ही नहीं। मन की प्रश्नरहित अवस्था ही एकमात्र उत्तर है। यही तो

ध्यान की पूरी प्रक्रिया है। प्रश्नों को गिरा देना, भीतर चलती बातचीत को गिरा देना। यही तो ध्यान की प्रक्रिया है। जब भीतर की बातचीत रुक जाती है तो ऐसा असीम मौन छा जाता है कि उस मौन में हर प्रश्न का उत्तर मिल जाता है। हर समस्या का समाधान मिल जाता है। हर चीज सुलझ जाती है। कहीं कोई समस्या रह ही नहीं जाती।'' मौलुंकपुत्र सजल नेत्रों से बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा। बुद्ध ने उसे उठाया और कहा--''वत्स! आज से तुम भी दूसरों को उनके प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ना सिखाओ। मन को मौन करना सिखाओ। यही ध्यान का सार है।'' ❑

महाभारत समाप्त होने के उपरांत धर्मराज युधिष्ठिर ने तीर्थयात्रा करने का निश्चय किया। साथ में चारों भाई—अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव समेत द्रौपदी भी थीं। प्रस्थान करने से पूर्व वे भगवान श्रीकृष्ण के पास गए और उनसे साथ चलने का आग्रह किया। श्रीकृष्ण को उस समय कुछ आवश्यक कार्य थे, अतः उन्होंने अपनी विवशता बताते हुए तीर्थयात्रा में साथ न जा सकने की बात कही। सुखद यात्रा की कामना करते हुए उन्होंने अपना कमंडलु युधिष्ठिर को सौंपते हुए कहा— ''बड़े भैया! जहाँ-जहाँ तीर्थस्थानों, नदियों और सरोवरों में स्नान करने का आपको अवसर मिले, वहाँ-वहाँ इस कमंडलु को भी उनमें अवश्य ही डुबा लीजिएगा।'' युधिष्ठिर कमंडलु लेकर सपरिवार तीर्थयात्रा को चल पड़े। काफी दिनों के बाद वापस लौटे और श्रीकृष्ण को उनका कमंडलु देते हुए कहा—''आपकी आज्ञानुसार जहाँ मैंने स्नान किया, वहाँ इसे भी पानी में डुबाया है।'' यही तो मैं चाहता था— इतना कहकर श्रीकृष्ण ने उस कमंडलु को जमीन में पटककर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए और प्रसाद रूप में एक-एक टुकड़ा वहाँ उपस्थित सभी लोगों में वितरित कर दिया।

जिसने भी यह प्रसाद चखा, उसका मुँह खराब हो गया। लोगों को थूकते हुए तथा मुँह बनाते हुए देखकर श्रीकृष्ण ने धर्मराज से पूछा—''यह इतने तीर्थों में घूमकर आ रहा है और अनेक स्थानों पर इसने स्नान भी किया है, फिर भी इसका कड़वापन दूर क्यों नहीं हुआ?'' युधिष्ठिर आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहने लगे— ''आप भी कैसी अजीब बात करते हैं श्रीकृष्ण, कहीं धोने मात्र से कमंडलु का कड़वापन निकल सकता है?'' अपनी स्वयं की पहेली सुलझाते श्रीकृष्ण कहने लगे—''यदि ऐसा है तो तीर्थस्नान का बाह्योपचार मात्र करने से अंतः का परिष्कार, धुलाई-मार्जन कैसे हो सकता है?'' धर्मराज ने आत्मशोधन की, अंतर्मुखी होकर आत्मपर्यवेक्षण की गरिमा को जाना व उसमें तत्परता से जुट गए।

परिवर्तन चक्र में स्वधर्मपालन

जीवन का शाश्वत प्रवाह गतिशील है, इसमें हर प्राणी एवं व्यक्ति अपनी भूमिका निभाते हुए जीवन की पूर्णता की ओर बढ़ रहा है। साथ ही इसमें परिवर्तन का शाश्वत चक्र भी सक्रिय है। जैसे दिन के बाद रात, सरदी के बाद गरमी का मौसम आता है, ऐसे ही सुख के बाद दु:ख, मान के साथ अपमान, उतार के बाद चढ़ाव और जीवन के बाद मरण का क्रम जारी है, निश्चित है। इनकी बार-बार पुनरावृत्ति ही जीवन का शाश्वत सत्य है।

ऐसे में इनमें से किसी एक के प्रति अत्यधिक आसक्ति विपरीत भाव को निमंत्रण है। किसी एक सत्य को अत्यधिक महत्त्व देना, दूसरे सत्य को नकारने की कुचेष्टा है, जिसके चलते सुख के चरम पर व्यक्ति दु:ख से आक्रांत अनुभव करता है। मान के प्रति अत्यधिक आसक्ति तनिक से अपमान से विचलित हो उठती है। जितना गहरा किसी वस्तु, व्यक्ति या पद के प्रति राग होगा, उतना ही उसके छिनने का भय, द्वेष होगा व विरोधी भाव से चित्त आक्रांत होगा।

जीवन के इस शाश्वत परिवर्तन चक्र को समझते हुए समझदारी इसमें है कि न ही सुख में बहुत अधिक फूले समाएँ और न ही दु:ख में गमगीन होकर अवसाद के अँधेरे में खो जाएँ। मानकर चलें कि सरदी के बाद गरमी का मौसम सुनिश्चित है, रात के बाद उजाला छाने वाला है। इसी तरह गहरे दु:ख-विषाद के बाद सुख-सुकून के पल आने तय हैं। दैवी विधान की यह समझ व उज्ज्वल भविष्य की आस्था व्यक्ति को द्वंद्वों के बीच संतुलन बिठाने व आशा-उत्साह के साथ विषम पलों को पार करने में निर्णायक भूमिका निभाती है।

इसलिए किसी से भी अधिक आशा व अपेक्षा न रखें। सबकी अपनी मजबूरियाँ हैं, अपनी सीमाएँ हैं, समस्याएँ एवं दु:ख-द्वंद्व हैं। यदि आशा के अनुरूप कहीं से काम नहीं हो रहा है या कोई अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतर पा रहा है, तो हो सकता है कि वह जान-बूझकर ऐसा न कर रहा हो। उसकी आंतरिक-बाह्य, पारिवारिक-सामाजिक परिस्थितियाँ इसमें बाधक बन रही हों।

किसी भी व्यक्ति के बारे में बिना सोचे-समझे निश्चित धारणा बनाने में अधिक समझदारी नहीं। हर व्यक्ति अपने स्वधर्म के अनुरूप अपना मार्ग तय कर रहा है, अपनी मंजिल की ओर बढ़ रहा है। अंतत: सभी ईश्वर की दैवी लीला के यंत्र हैं, उसके हाथ की कठपुतली हैं। अपने संस्कारों एवं कर्मों द्वारा संचालित जीव को प्रकृति या परमेश्वर—उसके स्वभाव, संकल्प व नियति के अनुरूप उसके गंतव्य तक पहुँचा रहे हैं।

इस आधार पर यह क्षणभंगुर जीवन अपनी अंतरात्मा की पिपासा व तड़प को शांत करने का एक अवसर है, अपने अधूरे सपनों व जुनून को जीने का धरातल है। गुरु के बताए मार्ग पर चलते हुए समाजसेवा के साथ आंतरिक बंधनों से मुक्ति का द्वार है और अपनी अंतरात्मा में बैठे सद्गुरु के निर्देश के अनुरूप हर पल पूर्णता के साथ जीने का उत्सव है।

लोभ और स्वार्थ, सभी पापों की जड़ हैं। इनका कुचक्र जिस पर चल जाता है, वह सदा के लिए मिट जाता है। फिर चाहे वह व्यक्ति हो, समाज हो अथवा राष्ट्र।

इसमें दूसरों की अवांछनीय धारणाओं, मान्यताओं, निर्णयों को हस्तक्षेप करने की इजाजत नहीं दी जा सकती। अंतर में यदि ईमानदारी के साथ अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन हो रहा है तो फिर संतोष कर लें कि आप सही मार्ग पर हैं।

यदि आप समझदारी के साथ लिए गए निर्णयों पर बहादुरी के साथ जीवन को उत्सर्ग कर देने का माद्दा रखते हैं तो मानकर चलें कि ईश्वर का वरदहस्त आपके ऊपर है, गुरुकृपा आपके साथ है, नियति का विधान आपको पूर्णता की मंजिल तक पहुँचाने के लिए प्रतिबद्ध है। ❑

मन ही मनुष्य का मित्र है और मन ही शत्रु भी

अपने जीवन को भौतिक रूप से सुखी, समृद्ध बनाना हो या फिर मोक्ष, मुक्ति, निर्वाण, कैवल्य, समाधि, भगवत्प्राप्ति आदि के रूप में जीवन के परम लक्ष्य को पाना हो, इन सबमें हमारे मन की भूमिका अहम होती है। मन हमारे शरीर में स्थित वह सूक्ष्म वस्तु है, जो किसी भी विषय को लेकर संकल्प-विकल्प करता है। हमारे द्वारा संचालित सभी क्रियाएँ, सभी कर्म मन के द्वारा ही प्रेरित होते हैं। हमारे चिंतन, चरित्र और व्यवहार आदि भी मन के द्वारा ही प्रेरित-प्रभावित होते हैं।

अस्तु हमारे जीवन की गति भी मन की गति पर ही निर्भर होती है। हमारे जीवन की दशा-दिशा मन की दशा-दिशा द्वारा ही निर्धारित होती है। मन की स्वीकृति, सहमति पाकर ही हम किसी कर्म में लिप्त होते हैं। मन की स्वीकृति पाकर ही हम कोई शुभ कर्म, अशुभ कर्म, पाप कर्म, पुण्य कर्म आदि करते हैं और तदनुरूप ही हम उन कर्मों के फल भोगते हैं।

हमारे स्थूलशरीर में स्थित हमारा सूक्ष्म मन बड़ा ही बलशाली है, बड़ा ही ताकतवर है, पर सत्य यह भी है कि यह बलशाली मन, ताकतवर मन, शक्तिशाली मन अपने बल का, अपनी शक्ति का, अपनी ताकत का उपयोग और दुरुपयोग दोनों कर सकता है। नियंत्रित मन, निर्मल मन, अपनी शक्ति का सदुपयोग कर व्यक्ति के जीवन में सुख, समृद्धि, शांति और आनंद लाता है तो वहीं अनियंत्रित मन व्यक्ति के जीवन में तबाही और संकट लाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि दुर्जन मन, अनियंत्रित मन हमारे लिए संकट पैदा कर देता है। वैसे ही, जैसे अनियंत्रित हो जाने पर हाथी भारी तबाही का कारण बन जाता है। अनियंत्रित हो जाने पर हाथी पर सवार व्यक्ति की जान भी खतरे में पड़ जाती है। हमारे जीवन की गाड़ी की ड्राइविंग सीट पर हमारा मन ही ड्राइवर है। हमारे जीवनरूपी रथ का ड्राइवर, सारथी हमारा मन ही है। हमारा मन चाहे तो हमें सही दिशा में ले जा सकता है और चाहे तो हमें गलत दिशा में भी ले जा सकता है।

यह ड्राइवर की मरजी है कि वह हमें किस ओर ले जाता है। इसी तरह जब तक मन की मरजी है तब तक हमारे लिए पग-पग पर खतरे-ही-खतरे हैं; क्योंकि यदि हम सच्चाई की ओर, भगवान की ओर जाना चाहते हैं तो यह तभी संभव है, जब हमारा मन भी सच्चाई की ओर, भगवान की ओर चलने को तैयार हो। यदि मन की मरजी इसमें नहीं है तो फिर वह हमें बलात् बुराई की ओर ले जाएगा और हमें बुरे कर्म, अशुभ कर्म आदि में प्रवृत्त करेगा।

कई बार हम बुरे कर्मों में प्रवृत्त होना नहीं चाहते, पर फिर भी हो जाते हैं। क्यों? क्योंकि हमारा हमारे मन पर नियंत्रण नहीं है। इसलिए हम मन के ही इशारे पर नाचते फिरते रहते हैं। बुरे कर्म करते हुए हमें बड़ी आत्मग्लानि होती है और अच्छे कर्म करते हुए आत्मा आनंदित होती है। इसलिए हम अच्छे कर्मों की ओर, भगवत्प्रेम, दान, यज्ञ, सेवा, परोपकार आदि में प्रवृत्त होना चाहते हैं, पर मन हमें इन कर्मों से बलात् अटकाकर हमें बुरे कर्मों में प्रवृत्त कर देता है। तब हम अपने को बहुत ही असहाय, बेबस और लाचार पाते हैं।

बुरे कर्म हो जाने के बाद हमें दु:ख होता है, ग्लानि होती है, तब हम ऐसा सोचते हैं कि काश! यदि हम ऐसा न किए होते, हम मन के बहकावे में न आए होते, हम अपने मन की न किए होते तो आज हम जेल की सलाखों के पीछे न होते, आज हम रिश्वत लेने के कारण अपमानित न होते, आज हम लोभ, मोह, क्रोध में अंधे होकर ऐसे घिनौने कृत्य न किए होते और उन कर्मों के दुष्परिणामों को आज नहीं भुगत रहे होते।

तब लगता है कि मैं ऐसा करने से स्वयं को रोक न सका। काश! यदि मैं मन के क्षणिक आवेश में आकर ऐसा न करता और शुभ कर्म, पुण्य कर्म, सही दिशा में पुरुषार्थ करता तो आज हमारे जीवन में सुख होता, शांति होती, समृद्धि होती। मुझे आत्मग्लानि नहीं, आत्मिक आनंद प्राप्त हुआ होता, पर ऐसा हो न सका; क्योंकि हमारा हमारे मन पर नियंत्रण रहा नहीं।

उस समय ऐसा लगता है कि न जाने क्यों हमारा मन विकारों से मुक्त नहीं रहा। हमारे मन में लोभ, मोह, काम, क्रोध की अशुद्ध भावनाएँ भरी रहीं और हम उनसे प्रेरित होकर वैसे ही कर्म करते रहे। काश! यदि हम विद्यार्थी जीवन में पढ़ाई में मन लगाए होते तो आज अपने अन्य साथियों की तरह हम भी खुशहाल होते।

यदि हम बिजनेस में, उद्योग में मन लगाए होते तो हम भी आज अच्छे उद्योगपति होते। यदि हम खेल में मन लगाए होते तो आज अच्छे खिलाड़ी होते। यदि हम गीत में, संगीत में मन लगाए होते तो आज अच्छे गीतकार होते, संगीतकार होते। यदि हम साधना में मन लगाए होते तो जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष, मुक्ति, भगवत्कृपा, भगवद्दर्शन प्राप्त कर लिए होते, पर ऐसा कुछ भी न हो सका।

क्यों ? क्योंकि मन कभी हमारे अनुकूल रहा नहीं, हमारे नियंत्रण में रहा नहीं। इसलिए मन के बहकावे में आकर हम भौतिक-आध्यात्मिक कोई भी पुरुषार्थ नहीं कर सके। अत: यह तो स्पष्ट है कि भौतिक जीवन में सफल होना हो या आध्यात्मिक जीवन में, दोनों ही दृष्टि से मन का शांत होना, एकाग्र होना, नियंत्रित होना आवश्यक है; क्योंकि शांत मन, एकाग्र मन से ही हम अपने किसी भी कार्य में अपनी समस्त शारीरिक-मानसिक ऊर्जा लगा पाते हैं और जिस कार्य में हम अपनी समस्त ऊर्जा, एकाग्रता लगा पाते हैं, सही समय पर सही निर्णय कर पाते हैं; उस कार्य में हमें सफलता और सिद्धि अवश्य ही प्राप्त होती है।

कभी-कभी हम शारीरिक रूप से कोई कार्य कर रहे होते हैं, पर हमारा मन वहाँ होता नहीं है। हमारा मन उस कार्य में न होकर संसार की सैर कर रहा होता है। अस्तु शारीरिक रूप से उपस्थित होते हुए भी हम वहाँ मानसिक रूप से अनुपस्थित होते हैं। फलस्वरूप उस कार्य में हमें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती है।

अत: मन को वश में करना आवश्यक है, पर प्रश्न यह उठता है कि चंचल मन को वश में, काबू में कैसे किया जाए। युद्धभूमि कुरुक्षेत्र में अर्जुन के मन में भी यही प्रश्न उठा कि चंचल मन को नियंत्रित किया कैसे जाए ? इसलिए अर्जुन गीता *(6.34)* में भगवान श्रीकृष्ण से कहते हैं—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

अर्थात हे श्रीकृष्ण! यह मन बड़ा चंचल, प्रमथन स्वभाववाला, बड़ा दृढ़ और बलवान है। इसलिए उसको वश में करना मैं वायु को रोकने की भाँति अत्यंत दुष्कर मानता हूँ।

तब भगवान श्रीकृष्ण गीता *(6.35-36)* में बोले—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥

अर्थात हे महाबाहो! निस्संदेह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है, परंतु हे कुंतीपुत्र अर्जुन! यह अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है। जिसका मन वश में किया हुआ नहीं है, ऐसे पुरुष के लिए योग दुर्लभ है और वश में किए हुए मन वाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधन से योग का प्राप्त होना सहज है, ऐसा मेरा मत है। भगवान यहाँ यह स्पष्ट कर रहे हैं कि मन निस्संदेह चंचल है, वायु की तरह गतिमान है और बलवान है, पर अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इसे वश में किया जा सकता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर अभ्यास और वैराग्य है क्या ? भगवत्प्राप्ति के लिए बारंबार भगवान के नाम और गुणों का श्रवण, कीर्तन, मनन, जप और भगवत्प्राप्ति विषयक शास्त्रों का स्वाध्याय आदि करते रहने को ही 'अभ्यास' कहा गया है। वैराग्य क्या है ? राग का न होना ही वैराग्य है। किसी विषय, वस्तु, व्यक्ति, स्थान आदि में राग न होना, आसक्ति न होना ही वैराग्य है।

विषय-वासना, धन, संतान कर्मफल आदि में आसक्ति का न होना ही वैराग्य है। हम संसार में रहते हुए निष्काम भाव से कर्त्तव्य कर्म करते रहें, शुभ कर्म, पुण्य कर्म करते रहें, पर उन कर्मों के फलों के प्रति आसक्ति न रखें, राग न रखें, यही वैराग्य है। अत: अभ्यास और वैराग्य का अभ्यास करते रहने से मन वश में होने लगता है। इसके साथ ही भगवान कहते हैं—

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

—गीता-6.26

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥

—गीता-6.27

'नारी सशक्तीकरण' वर्ष

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

—*गीता-12.8*

अर्थात यह स्थिर न रहने वाला और चंचल मन जहाँ-जहाँ दौड़कर जाए, वहाँ-वहाँ से हटाकर इसे बारंबार परमात्मा में लगाना चाहिए; क्योंकि जिसका मन भली प्रकार शांत है, जो पाप से रहित है और जिसका रजोगुण शांत हो गया है, ऐसे इस सच्चिदानंदघन ब्रह्म के साथ एकीभाव हुए योगी को उत्तम आनंद प्राप्त होता है। इसलिए हे अर्जुन! तू मुझमें ही मन को लगा और मुझमें ही बुद्धि को लगा, इसके उपरांत तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

योगदर्शन में महर्षि पतंजलि ने भी मन को निर्मल करने एवं वश में करने के लिए अभ्यास और वैराग्य को महत्त्वपूर्ण माना है। योगदर्शन (समाधिपाद—*12*) में वह कहते हैं—

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः॥

अर्थात उन चित्तवृत्तियों का निरोध अभ्यास और वैराग्य से होता है।

दरअसल इस सूत्र में ऋषिवर यह कहना चाहते हैं कि चित्त में संव्याप्त कर्म संस्कारों के प्रभाव से, बल से चित्तवृत्तियों का प्रवाह सांसारिक भोगों की ओर चल रहा है। उस प्रवाह को रोकने का उपाय वैराग्य है और उसे कल्याणमार्ग में ले जाने का उपाय अभ्यास है। ऋषिवर पुनः समाधिपाद—*13, 14* में कहते हैं—

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः॥
स तु दीर्घकाल नैरन्तर्यसत्काराऽऽसेवितो दृढभूमिः॥

अर्थात उन दोनों में से चित्त की स्थिरता के लिए जो प्रयत्न करना है, वह अभ्यास है, परंतु वह अभ्यास दीर्घकाल तक निरंतर करते रहने से दृढ़ अवस्था वाला होता है।

यहाँ ऋषिवर बहुत ही मार्मिक और महत्त्वपूर्ण सीख दे रहे हैं। वे कह रहे हैं कि अपने योग साधन के अभ्यास को दृढ़ बनाने के लिए साधक को चाहिए कि वह साधना में कभी उदासीन न हो, कभी उतावला न हो, कभी उकताए नहीं, बल्कि उस (योग-साधना) को धैर्यपूर्वक दीर्घकाल तक लगातार करता रहे और यह दृढ़विश्वास रखे कि उसके द्वारा किया जा रहा योगाभ्यास, प्रयत्न, पुरुषार्थ, साधना कभी व्यर्थ नहीं हो सकता, कभी निष्फल नहीं हो सकता। समय आने पर उसकी साधना का परिणाम अवश्य ही प्रकट होगा। उसकी साधना अवश्य ही सफल होगी। उसका मन निश्चित ही निर्मल होगा, नियंत्रित होगा। अपनी साधना का सुफल, सुंदर परिणाम उसे अवश्य ही प्राप्त होगा। इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

मन को निर्मल करने को लेकर ऋषिवर योगदर्शन में अन्य उपायों का जिक्र भी कर रहे हैं। जैसे—

मैत्रीकरुणा मुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्य-विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम्॥

—*समाधिपाद 1.33*

अर्थात सुखी मनुष्यों में मित्रता की भावना करने से, दुःखी मनुष्यों में दया की भावना करने से, पुण्यात्मा पुरुषों में प्रसन्नता की भावना करने से और पापियों में उपेक्षा की भावना करने से चित्त के राग, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या और क्रोध आदि मलों का नाश होकर चित्त शुद्ध-निर्मल हो जाता है। अतः साधक को इसका अभ्यास करना चाहिए। वहीं अगले सूत्र में वे कहते हैं—

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य॥ —*1.34*

अर्थात प्राणवायु को बारंबार बाहर निकालने और रोकने के अभ्यास से भी चित्त निर्मल होता है।

इस सूत्र में ऋषिवर मन को निर्मल करने हेतु प्राणायाम के अभ्यास को महत्त्वपूर्ण बता रहे हैं।

यह सत्य है कि प्राणवायु को बारंबार शरीर से बाहर निकालने तथा यथाशक्ति बाहर रोके रखने का अभ्यास करने से मन में निर्मलता आती है। इससे शरीर की नाड़ियों का भी मल नष्ट होता है। प्राणायाम के अभ्यास के अंतर्गत हम योगशास्त्रों में वर्णित अनुलोम-विलोम प्राणायाम, नाड़ीशोधन प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम, भ्रामरी प्राणायाम आदि का अभ्यास नियमित रूप से कर सकते हैं। ऋषिवर आगे कहते हैं—

वीतरागविषयं वा चित्तम्॥ —*1.37*

अर्थात वीतराग को विषय करने वाला चित्त भी स्थिर हो जाता है। यहाँ ऋषिवर यह कहना चाहते हैं कि ऐसे वीतराग पुरुष, विरक्त पुरुष जिनके राग-द्वेष नष्ट हो चुके हैं, ऐसे बुद्धपुरुष जिन्हें आत्मबोध, आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान आदि की उपलब्धि हो चुकी हो, उन्हें ध्येय (ध्यान व विषय) बनाकर अभ्यास करने वाला अर्थात उनके विरक्त भाव का मनन करने वाला चित्त भी स्थिर हो जाता है।

देवभूमि भारत में महर्षि वसिष्ठ, महर्षि विश्वामित्र, महर्षि याज्ञवल्क्य, महर्षि परशुराम, महर्षि भगीरथ, महर्षि वाल्मीकि, महर्षि चरक, गौतम बुद्ध, महावीर, महावतार बाबा गुरु गोरखनाथ, आचार्य शंकर, संत नामदेव, संत रामकृष्ण परमहंस, श्रीअरविंद, रमण महर्षि, परमपूज्य गुरुदेव आदि अगणित ऋषि, योगी, ब्रह्मज्ञानी, वीतराग, विरक्त, बुद्धपुरुष हुए हैं। हम अपनी रुचि के अनुसार इनमें से किसी को भी अपने ध्यान का विषय बना सकते हैं। उनके दिव्य गुणों का चिंतन, मनन कर सकते हैं।

पुनः अगले सूत्र में ऋषिवर कहते हैं—

यथाभिमतध्यानाद्वा॥ —*समाधिपाद 1.39*

अर्थात जिसको जो अभिमत हो, उसके ध्यान से भी मन स्थिर हो जाता है। इस सूत्र में ऋषिवर यह कहना चाहते हैं कि उपर्युक्त साधनों में से कोई साधन यदि किसी साधक के अनुकूल नहीं पड़ता हो तो उसे अपनी रुचि के अनुसार अपने इष्टदेव का अथवा ईश्वर के सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार किसी भी रूप का ध्यान करना चाहिए। इस प्रकार अपनी रुचि की ध्येय वस्तु पर ध्यान करने से मन स्थिर हो जाता है। एक अन्य सूत्र में ऋषिवर मन के संस्कारशून्य हो जाने की अवस्था का जिक्र करते हुए कहते हैं—

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः॥

—*समाधिपाद 1/51*

अर्थात उसका भी निरोध हो जाने पर निर्बीज समाधि होती है। ऋषिवर यहाँ स्पष्ट कर रहे हैं कि जब ऋतंभरा प्रज्ञाजनित संस्कार के प्रभाव से अन्य सब प्रकार के संस्कारों का अभाव हो जाता है—उसके बाद उस ऋतंभरा प्रज्ञा से उत्पन्न संस्कारों में भी आसक्ति न रहने के कारण उनका भी निरोध हो जाता है। संस्कार के बीज का सर्वथा अभाव हो जाने से जन्मी इस अवस्था का नाम निर्बीज समाधि है।

वहीं योगसूत्र—2/28 में ऋषिवर चित्तशुद्धि हेतु योग के अंग (अर्थात यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि) अष्टांगयोग के अभ्यास को महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी का स्पष्ट मत है कि प्रज्ञायोग, आसन, नाड़ीशोधन प्राणायाम, प्राणाकर्षण प्राणायाम, भ्रामरी प्राणायाम, भगवद्उपासना, सविता (उदीयमान सूर्य का) ध्यान, गायत्री मंत्र जप, आत्मबोध, तत्त्वबोध आदि योग साधनों के नित्य निरंतर अभ्यास एवं दान, परोपकार, सेवा, सत्संग, स्वाध्याय आदि के करने से चित्त निर्मल होता है, स्थिर होता है और चित्त के स्थिर होने व निर्मल होने से हमें भौतिक एवं आध्यात्मिक सुखों की प्राप्ति होती है।

अमृतबिंदु उपनिषद् में मन को लेकर कई सूत्र दृष्टिगोचर होते हैं; जैसे—

मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च।
अशुद्धं कामसङ्कल्पं शुद्धं कामविवर्जितम्॥ 1॥

अर्थात मन दो प्रकार के कहे गए हैं। एक शुद्ध मन और दूसरा अशुद्ध मन। कामना और संकल्प से युक्त मन अशुद्ध मन है और कामना और संकल्प से मुक्त मन ही शुद्ध मन है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्तत्यै निर्विषयं स्मृतम्॥ 2॥

अर्थात मन ही मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण है। विषयों में आसक्त मन बंधन का कारण है और विषयों से विरक्त मन मोक्ष का कारण है।

यतो निर्विषयस्यास्य मनसो मुक्तिरिष्यते।
अतो निर्विषयं नित्यं मनः कार्यं मुमुक्षुणा॥ 3॥

अर्थात इंद्रिय विषयों की इच्छा से मुक्त मन ही मुक्त है। अस्तु मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले साधक को अपने मन को विषयों से मुक्त रखना चाहिए।

निरस्तविषयासङ्गं सन्निरुद्धं मनो हृदि।
यदायात्युन्मनीभावं तदा तत्परमं पदम्॥ 4॥

अर्थात विषयासक्ति से मुक्त और हृदय में निरुद्ध मन जब अपने अभाव को प्राप्त होता है, तब परमपद प्राप्त होता है।

तावदेव निरोद्धव्यं यावत् हृदि गतं क्षयम्।
एतज्ज्ञानं च ध्यानं च शेषो न्यायस्य विस्तरः॥ 5॥

अर्थात तभी तक हृदय में मन का निरोध करना चाहिए, जब तक उसका क्षय न हो जाए। इसी को ज्ञान कहते हैं और इसी को ध्यान कहते हैं और बाकी सब न्याय का विस्तार है, तर्क-वितर्क है।

इस प्रकार विविध शास्त्रों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि मन ही बंधन और मोक्ष का कारण है। मन ही मनुष्य का मित्र है और मन ही मनुष्य का शत्रु है। अशुद्ध मन, अस्थिर मन, अनियंत्रित मन, मनुष्य को पतन, पराभव और पाप में प्रवृत्त करता है।

ऐसा मन मनुष्य का शत्रु है तो वहीं शुद्ध मन, स्थिर मन, नियंत्रित मन मनुष्य की मुक्ति का कारण है, भगवत्प्राप्ति का कारण है। अस्तु ऐसा मन ही मनुष्य का मित्र है। पवित्र मन मनुष्य को पुण्यकर्मों में प्रवृत्त करता है। एकाग्र मन, स्थिर मन आध्यात्मिक ही नहीं, वरन भौतिक जगत् में भी, भौतिक क्षेत्र में भी मनुष्य को सफल, सुखी और समृद्ध बनाता है। उसे चहुँ ओर सफलता मिलती है।

हमें निष्काम भक्ति, निष्काम कर्म (कर्मयोग), ज्ञानयोग, राजयोग, ध्यान, सविता ध्यान, प्राणायाम आदि के नित्य अभ्यास से मन को निर्मल व स्थिर करने का अभ्यास करते रहना चाहिए। हमें वीतराग, विरक्त बुद्धपुरुषों की जीवनी, आत्मकथाएँ उनके द्वारा रचित साहित्य एवं भगवत्प्राप्ति विषयक शास्त्रों का स्वाध्याय करते रहना चाहिए। सत्पुरुषों का संग (सत्संग) प्राप्त करना चाहिए। साथ ही दान, परोपकार आदि जनसेवा के कार्यों में लगे रहना चाहिए। ऐसा करने से ही मन हमारा मित्र बनता है और श्रेष्ठ मार्ग की ओर अग्रसर होता है। ❑

मोक्ष पथ के अभीप्सु बुद्ध के एक शिष्य ने बुद्ध से प्रार्थना की—''हे प्रभु! मुझे मनन का उपदेश दीजिए, ताकि मैं अध्यवसाय द्वारा स्वयं का उद्धार कर सकूँ।'' अंतर्दृष्टिसंपन्न भगवान बुद्ध शिष्य की सच्ची जिज्ञासा को भाँपते उसे विस्तारपूर्वक समझाने लगे—''मनन पाँच प्रकार के होते हैं। पहला मनन प्रेम का मनन है, जिसके अंतर्गत तुम्हें अपने हृदय को इस प्रकार समायोजित कर लेना चाहिए कि तुम समस्त प्राणियों की समृद्धि और कल्याण की कामना करो और जिसमें तुम्हारे शत्रुओं के लिए सुख की कामना भी समाहित हो।

''दूसरा मनन करुणा का मनन है, जिसमें तुम समस्त प्राणियों की पीड़ाओं का विचार उनके दु:खों और चिंताओं की स्पष्ट कल्पना के साथ इस प्रकार करते रहो कि तुम्हारी आत्मा में उनके लिए गहन करुणा का संचार हो जाए।

''तीसरा मनन आनंद का मनन है, जिसमें तुम दूसरों की समृद्धि की आकांक्षा करते हो और उनको आनंदित देखकर स्वयं आनंदित होते हो।

''चौथा मनन अपवित्रता का मनन, जिसमें तुम व्यभिचार के दुष्परिणामों पर तथा पाप और रोगों के प्रभावों पर विचार करते हो। प्राय: क्षणिक सुख भी कितना क्षुद्र होता है तथा इसका परिणाम भी कैसा मर्मांतक होता है।

''पाँचवाँ मनन प्रशांति का मनन है, जिसमें तुम प्रेम और घृणा, आतंक और उत्पीड़न, धन और दरिद्रता से ऊपर उठ जाते हो और स्वयं अपने भाग्य पर तटस्थ होकर प्रशांति और पूर्ण धैर्य से विचार करते हो।''

शिष्य की जिज्ञासा का समाधान हुआ और बुद्ध के उपदेश को हृदयंगम कर वह कल्याण के पथ पर पूर्ण निष्ठा के साथ आरूढ़ हो गया।

दिव्यता एवं पावनता का प्रतीक गुरुग्रंथ साहिब

गुरुग्रंथ साहिब एक आध्यात्मिक ग्रंथ है। इसके हर पन्ने पर आध्यात्मिक वैभव एवं विभूतियाँ संगृहीत हैं। इन अनुभूतियों के हर पन्नों में अलग एहसास है। दिव्यता एवं पावनता की एक अलग चमक इसमें सन्निहित है। गुरुओं की महकती साधना की एक अनूठी खुशबू है। समर्पण की सरगम इसमें हर कहीं सुनी जा सकती है। गुरुग्रंथ की महत्ता और महिमा अपरंपार है। इस संदर्भ में एक ऐतिहासिक घटना है।

आज से तीन सौ साल पहले गुरु गोविंद सिंह अपनी दक्षिण यात्रा में नांदेड़ पहुँचे थे। वहाँ जब वे अपने शिविर में दोपहर के पश्चात विश्राम कर रहे थे तो उस समय उन पर सरहिंद के नवाब वजीर खाँ द्वारा भेजे गए दो व्यक्तियों ने भयानक हमला किया था। इससे उनका देहावसान हो गया था।

देहावसान के पूर्व उनके शिष्यों ने उनसे पूछा था— ''अब हमारा मार्गदर्शन कौन करेगा ? हमारा गुरु कौन होगा ?'' तब गुरु गोविंद सिंह ने कहा—''गुरु नानक देव से चली आ रही दो सौ वर्ष पुरानी देहधारी गुरु की परंपरा पर मैं विराम लगा रहा हूँ। पाँचवें गुरु गुरु अर्जुन देव द्वारा संपादित आदिग्रंथ को आप सभी का गुरु बना रहा हूँ। भविष्य में आप इस ग्रंथ से ही अपना मार्ग-निर्देश प्राप्त करें।''

इसी के साथ उन्होंने यह घोषणा की कि अब से यह पूरा पंथ भी गुरु का स्थान ग्रहण करेगा। पूरे पंथ के प्रतिनिधि मिलकर जो निर्णय लेंगे, उसे गुरु का निर्णय ही माना जाएगा। उसके पश्चात पंथ को भी गुरुपंथ कहा जाने लगा था। इसके बाद से ही इस पवित्र ग्रंथ को अनंत गुरु का दर्जा मिला और तभी से यह श्रद्धालुओं का मार्गदर्शक बनकर उन्हें राह दिखा रहा है।

यह पवित्र दिन 3 नवंबर, सन् 1708 का था और इसीलिए हर साल उसी दिन बड़ी संख्या में श्रद्धालु उस ऐतिहासिक क्षण को स्मरण करने के लिए नांदेड़ पहुँचते हैं। सारे संसार में इसे 'गुरुता गद्दी दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

एक प्रकार से यह 'व्यक्ति गुरु' से 'शब्द गुरु' की ओर बढ़ने का उपक्रम है। गुरु नानक देव से लेकर सभी सिख गुरुओं का यह विचार था कि देहधारी गुरु नश्वर होता है। उसके द्वारा जो वाणी रची जाती है वह शाश्वत होती है। गुरु रामदास ने अपनी एक उक्ति में कहा था—'बानी गुरु गुरु है बानी, विच बानी अमृत सारे।' सभी गुरु एकमत थे कि व्यक्ति के स्थान पर शब्द को महत्त्व दिया जाना चाहिए।

गुरु गोविंद सिंह ने आदि ग्रंथ को गुरुता एवं महत्ता प्रदान करके इस उद्देश्य की पूर्ति की थी। गुरुग्रंथ साहिब अपने आप में एक अद्भुत एवं दिव्य ग्रंथ है। इसमें छह गुरुओं के अतिरिक्त देश के विख्यात पंद्रह संतों की वाणी का संकलन भी किया गया है। इसी के साथ इसमें चौदह भक्त कवियों की रचनाएँ भी संगृहीत हैं। कालक्रम की दृष्टि से देखा जाए तो बंगाल के जयदेव और पाकपट्टन (मुल्तान) के शेख फरीद 12वीं सदी के संत थे। इसमें त्रिलोचन, रविदास, कबीर, पीपा, सैंण, खन्ना आदि संत 15वीं सदी के थे। इस प्रकार यह आध्यात्मिक ग्रंथ 12वीं से लेकर 17वीं सदी के गुरुओं, संतों, भक्तों की वाणी का संग्रह एवं संकलन है। इसे 500 वर्षों की भारतीय चिंतनधारा के एक प्रतिनिधि ग्रंथ के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

इस पावन ग्रंथ में हिंदू भक्त भी शामिल हैं और मुसलमान सूफी संत भी। इसमें उच्च जाति के रामानंद, जयदेव, परमानंद जैसे संत भी हैं, तो नामदेव, कबीर, रविदास, सौंण जैसे उन संतों की वाणी भी संगृहीत है, जिन्हें छोटी जाति का समझा जाता था। इस प्रकार यह ऐसा ग्रंथ है, जिसमें न धर्म का बंधन है, न प्रदेश की सीमा है, न भाषा का कोई आग्रह है और न चिंतन का कोई अंकुश है।

उत्तर में शेखपुरी से लेकर महाराष्ट्र के नांदेड़ और पश्चिम में सिंध से लेकर बंगाल के जयदेव तक के भक्तों और संतों की रचनाओं को इसमें सम्मिलित किया गया है।

किसी भी संत की वाणी का चयन करते समय कसौटी केवल यही थी कि वह एक ईश्वर की उपासना के लिए समर्पित हो, समतामूलक समाज की स्थापना उसका आधार

हो, जात-पाँत और ऊँच-नीच के भेदभाव से रहित हो और मानव मात्र की एकता का संदेश भी उसमें निहित हो।

इस ग्रंथ में संगृहीत सभी रचनाकार इस बात पर जोर देते हैं कि प्रभुभक्ति से कुछ भी संभव हो सकता है। नीच समझा जाने वाला व्यक्ति भी उच्चता प्राप्त कर सकता है। संत रविदास की यह उक्ति इस ग्रंथ में आई है—'**नीचहुँ ऊँच करे, मेरा गोविंद काहू ते न डरे**।'

इसी ग्रंथ में तीसरे गुरु गुरु अमर दास ने कहा है कि नामदेव दरजी थे, कबीर जुलाहे थे, रविदास चर्मकार थे, प्रभुकृपा से उन्हें सद्गति प्राप्ति हुई। इस अद्भुत ग्रंथ को ठीक तीन सौ वर्ष पहले गुरु गोविंद सिंह ने गुरु पद पर स्थापित कर दिया।

जिन्होंने भी इस पावन ग्रंथ के सार को, सत्त्व को पिया है, उन सभी में दिव्यता की नई ऊर्जा जागी है। कइयों ने गुरु गोविंद सिंह की चेतना को अपने में उफनते-उमड़ते-उमगते पाया है। कुछ ने उनके रहस्यमय स्वरों को अपनी भावचेतना में सुना है एवं इसके पाठ से अनेकों का जीवन उच्चस्तरीय चेतना के संकेतों-संदेशों से धन्य हुआ है।

इसके सम्मान एवं दर्शन से जीवन में पवित्रता की बाढ़ आती है। भक्ति का समुद्र उमड़ता है। निर्मल भावनाओं का तूफान उठता है। अंत:करण में ऐसे वातावरण में स्वयं का अनुभव होता है। गुरुग्रंथ साहिब को भावपूर्वक प्रणाम एवं नमन है। ❑

सिख गुरु अर्जुनदेव की पत्नी माता गंगादेवी निस्संतान होने के कारण बहुत अशांत रहती थीं। एक दिन पत्नी को बहुत दु:खी देखकर अर्जुनदेव ने उन्हें ब्रह्मज्ञानी संत बुड्ढा जी के पास जाकर आशीर्वाद लेने की सलाह दी। माता गंगादेवी ने जाने का निश्चय कर लिया। उन्होंने भाँति-भाँति के पकवान बनाए और रथ में बैठकर लाव-लश्कर के साथ गईं। उन्हें देखते ही बाबा समाधिस्थ हो गए। बहुत प्रतीक्षा के बाद भी जब उनकी समाधि नहीं खुली तो माता गंगादेवी निराश होकर लौट आईं और पति को पूरी बात बताई।

तब अर्जुनदेव बोले—"वे पूर्ण ब्रह्मज्ञानी हैं। उनका आशीर्वाद ऐसे नहीं मिलेगा। तुम्हें पूर्ण श्रद्धा, सादगी के साथ नंगे पाँव पैदल चलकर जाना होगा।" गंगादेवी ने कहा—"ठीक है।" तब अगले दिन माता ने अपने हाथ से रोटियाँ बनाईं, बरतन में लस्सी ली और इन्हें अपने सिर पर उठाकर नंगे पाँव चली गईं। जैसे ही वे उनके डेरे के करीब पहुँचीं; स्वयं बाबा बुड्ढा उनको लेने आगे चले आए और बोले—"माता! मुझे आपका ही इंतजार था। मुझे बहुत भूख लगी है। मुझे रोटियाँ खिलाओ।"

तृप्त हो जाने के बाद बाबा ने आशीर्वाद दिया। समय आने पर माता गंगादेवी ने एक महान पुत्र को जन्म दिया, जो बड़े होकर सिख धर्म के छठें गुरु—गुरु हरगोविंद सिंह के नाम से विख्यात हुए।

जल–उपवास : प्रक्षालन प्रयोग

विगत अंक में आपने पढ़ा कि पूज्य गुरुदेव निर्दिष्ट स्वर्ण जयंती-साधना के अंतर्गत गायत्री परिजनों द्वारा प्रचार में लाई जा रही गायत्री की संक्षिप्त उपासनापद्धति के संबंध में विभिन्न धर्म-समुदायों ने अपनी आपत्ति जताई। धार्मिक पद्धतियों की परंपराओं को आधार मानते चले आ रहे महानुभावों के लिए पूज्यवर के इस युगानुकूल अनूठे प्रयोग को स्वीकारना संभव न बन पड़ रहा था, किंतु अदृश्य सूत्रधार की इस दैवी योजना के समक्ष यह अवरोध अधिक दिन टिक भी न सका। समय बीतने के साथ धर्म-संप्रदायों में जहाँ अनेक प्रतिष्ठित विभूतियों ने अपनी मान्यतानुसार कुछ विशिष्ट प्रयोगों के आधार पर इस साधना-विधि की प्रामाणिकता को सिद्ध किया तो वहीं कुछ ने इसकी सारगर्भिता को अपनी मूक सम्मति प्रदान की। आइए पढ़ते हैं इससे आगे का विवरण ..

अक्टूबर, 1976 की दूसरी तारीख बीती भी नहीं थी कि गुरुदेव ने चौबीस दिन के जल-उपवास की घोषणा कर दी। इस निश्चय का पता शांतिकुंज के कार्यकर्त्ताओं को भी नहीं चला। यों परिजन इस तथ्य से परिचित रहे हैं और अभ्यस्त भी कि वर्ष की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का निर्धारण वसंत पर्व पर होता रहा है। पिछले वसंत पर्व पर 5 फरवरी, 1976 को इस तरह का कोई संकेत नहीं था। तब साधना स्वर्ण जयंती की धूम मची हुई थी। साधक मंडलियों का गठन, उनमें प्रवेश पाने की पात्रताएँ, उन पात्रताओं के आधार पर अपने आप को कसने और विशिष्ट साधना करने, नहीं करने के विचारों में डूबने-उतराने का ही उत्साह उमड़ा दिखाई दे रहा था। स्वर्ण जयंती-साधना का गठन गायत्री जयंती को पूरा हो जाना था। वह पूरा हो गया था। उससे पहले चैत्र नवरात्र और बाद में आश्विन नवरात्र के अनुष्ठान भी संपन्न हो गए। कोई संकेत नहीं मिले कि गुरुदेव निकट भविष्य में इतना बड़ा निर्णय लेने वाले हैं।

परिजनों को गुरुदेव के स्वास्थ्य और शरीर के बारे में ज्यादा चिंता नहीं थी। सन् 1952 में मथुरा में गायत्री तपोभूमि की स्थापना के समय भी 24 दिन का जल-उपवास किया था। उस तप-साधना के प्रत्यक्षदर्शी परिजन अब भी मौजूद थे। वे बताते थे कि तब गुरुदेव के शरीर में कैसा अद्भुत प्राण-प्रवाह बहता था। वे कंबल या चादर ओढ़े रहते थे, लकड़ी के तख्त पर सोते थे और किसी को भी अपने पैर छूने नहीं देते थे। परिजनों के प्रति दुलार व्यक्त करते हुए उनके सिर पर हाथ रखने, थपथपा देने वाला स्पर्श भी तब उन्होंने बंद कर दिया था। उन परिजनों का मानना था कि गुरुदेव के चुंबकीय स्पर्श से इस बार भी वंचित रहना पड़ेगा। शांतिकुंज में एक कार्यकर्त्ता ऐसे भी थे, जिन्होंने 1952 में गायत्री तपोभूमि की स्थापना का समय देखा था और गुरुदेव के शरीर पर जल-उपवास का प्रभाव भी देखा था। कन्हैयालाल श्रीवास्तव नामक कार्यकर्त्ता जल-उपवास का निश्चय सुनकर विचलित हो उठे। 24 दिन तक निर्जल निराहार की घोषणा सुनते ही उनकी आँखों से अश्रुधार बह निकली। कुछ ही क्षण बीते होंगे कि वे फूट-फूटकर रोने लगे। आस-पास के कार्यकर्त्ताओं ने उन्हें सँभाला और गोष्ठी से उठाकर बाहर ले गए। उन्हें बाहर ले जाते देख गुरुदेव ने कहा—"किसी तरह की चिंता मत करो कन्हैयालाल। 29 अक्टूबर को हम लोग फिर मिलेंगे और माताजी के बनाए व्यंजन खाएँगे।"

कन्हैयालाल का विलाप इस पर भी रुका नहीं था। गोष्ठी से जिन कार्यकर्त्ता की बाँह पकड़कर वे बाहर आए थे, उनसे उन्होंने कहा था—"हमें पता है 52 के जल-उपवास में गुरुदेव की क्या दशा हो गई थी ? उनसे उठते नहीं बना था। मंदिर से यज्ञशाला तक आने के लिए उन्हें कार्यकर्त्ताओं को सहारा देना पड़ रहा था। बड़ी मुश्किल से गुरुदेव यज्ञशाला तक पहुँच सके थे।" उन्होंने 1952 के जल-उपवास को याद किया और चार अक्टूबर को, गुरुदेव का जल-उपवास आरंभ होने से एक दिन पहले फिर कहा—"कहीं ऐसा न

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

हो कि गुरुदेव इस तरह अपनी लीला समेट रहे हों। तपोभूमि की स्थापना के समय उन्होंने जल-उपवास खोलते समय कहा था कि चौबीस वर्ष बाद हम एक नए अध्यात्म जगत् में प्रवेश करेंगे। उस प्रवेश से हजारों लोग व्यथित होंगे। लेकिन महाकाल किसी के व्यथित होने से अपने इरादे बदल तो नहीं देता।''

चौबीस वर्ष पुरानी याद

कन्हैयालाल जी ने हिसाब लगा लिया था कि तपोभूमि की स्थापना के चौबीस वर्ष पूरे हो रहे हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि उन्होंने लोकांतर यात्रा का निश्चय कर लिया हो। लगे हाथों वे यह भी कह रहे थे कि चौबीस साल पहले गुरुदेव स्वस्थ युवा थे। उनके शरीर में दम-खम था। उस वक्त भी वे उपवास के बाद बहुत कमजोर हो गए थे। उपवास की अवधि में भी वे कमजोर दिखाई देते थे। अब तो उनका शरीर वृद्ध हो गया है—पैंसठ वर्ष से अधिक। पता नहीं उनकी काया उपवास के प्रभाव को सह पाए या नहीं। कहते-कहते उनका गला रुँध गया। चौबीस दिन के जल-उपवास की घोषणा से शांतिकुंज में रहने वाले सभी कार्यकर्त्ता चिंतित और दु:खी थे। निश्चिंत और अप्रभावित सिर्फ माताजी थीं। साफ और दो टूक वाक्यों में उन्होंने कहा था कि गुरुदेव ने जो कहा है, उसमें तनिक भी संदेह करने की जरूरत नहीं है। आप अपने मन की शंकाओं को तूल नहीं दें, उनके वचनों पर विश्वास करें।

जल-उपवास का निर्णय जिस समय किया गया था, तब तक अखण्ड ज्योति अक्टूबर, 1976 का अंक छपकर परिजनों के पास पहुँच गया था। उन दिनों परिजनों के पास कोई संदेश पहुँचाने या कार्यक्रम देने का यही एक माध्यम था। सूचना-संचार का तंत्र इतना विकसित नहीं हुआ था कि उसका उपयोग कर गायत्री परिवार की हजारों शाखाओं तक जल-उपवास की सूचनाएँ पहुँचाई जा सकें। आश्रम में निवास करने वाले कार्यकर्त्ताओं ने अपने स्वजन संबंधियों को और मित्र, परिचितों को पत्र लिखकर जल-उपवास की जानकारी दी। उन दिनों फोन की सुविधा भी इतनी सुलभ नहीं थी कि तुरंत सूचना दी जा सके। दूर संचार विभाग के लैंडलाइन फोन ही थे और उनका विस्तार भी ज्यादा नहीं हुआ था। एसटीडी सुविधा भी चलन में नहीं आई थी। दूर बात करने के लिए टेलीफोन एक्सचेंज में ट्रंककाल बुक कराना होता और अपनी बारी का इंतजार करना पड़ता था। लिहाजा उपलब्ध संचार सेवाओं से जिनमें डाक विभाग ही था, से गुरुदेव के जल-उपवास की सूचना परिजनों तक पहुँचाई जा सकी। इस तरह जब तक लोगों को जानकारी पहुँची होगी, तब तक जल-उपवास का एक अंश पूरा हो गया।

लेकिन बात इतनी ही नहीं है। विस्मित कर देने वाला पक्ष तो यह था कि जल-उपवास आरंभ होने के दूसरे-तीसरे दिन से ही गायत्री परिवार की शाखाओं से सहयोगी कार्यक्रमों के समाचार आने लगे। परिजन बताने लगे कि उन्होंने अपने यहाँ क्रमिक उपवास शुरू कर दिए हैं। स्थानीय शाखा-कार्यालयों में जैसी भी हो सकी, व्यवस्था की गई थी। एक-दो कमरों में या कार्यकर्त्ताओं के निवास पर लोगों ने अखंड जप आरंभ कर दिया था। परिजन वहाँ चौबीस-चौबीस घंटे के उपवास करने लगे थे और उस दिन का बचा हुआ भोजन, अन्न या उसके मूल्य के बराबर की राशि गायत्री परिवार के प्रयोजनों में लगाने के लिए अलग रख रहे थे।

डाक द्वारा सूचना पहुँचने और जवाब आने में लगभग एक सप्ताह लगा होगा। लेकिन सात अक्टूबर को मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, बिहार, महाराष्ट्र, ओडिशा, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, मुंबई, गोवा, हिमाचल, पंजाब और हरियाणा आदि प्रांतों से करीब तीन सौ पत्र आ गए। इन पत्रों में गुरुदेव के जल-उपवास का संदर्भ यद्यपि नहीं दिया गया था, लेकिन स्थानीय स्तर पर जो आयोजन शुरू हुए थे, वे गुरुदेव के इस तप से जुड़े हुए ही प्रतीत हो रहे थे।

जल-उपवास की सूचना विलक्षण ढंग से लोगों तक पहुँची। गायत्री तपोभूमि मथुरा में तो यह संवाद उपवास के निर्धारण की शाम को ही पहुँच गया था। युग निर्माण योजना पाक्षिक का 5 अक्टूबर अंक छपकर लगभग तैयार था। अगले दिन डिस्पैच में जाना था। तुरत-फुरत व्यवस्था की गई और छपे हुए पन्ने रोककर उनमें उपवास की सूचना जोड़ी गई। साथ ही यह निर्देश भी कि इन दिनों परिजन शांतिकुंज आने के बजाय अपने यहीं साधना-उपासना के कार्यक्रम चलाएँ। नई जोड़ी गई सामग्री में जल-उपवास के उद्देश्य भी संक्षेप में लिख दिए गए थे।

संवाद पहुँचाने के इस प्रयास को गंतव्य तक जाने में तीन-चार दिन लगे। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कई जगह अपनी मार्गदर्शक सत्ता से कदम मिलाकर चलने वाली सक्रियता पहले ही उभर आई थी। बिना किसी सूचना और संवाद के लोगों को पता चलने वाले अनुभव भी कम विलक्षण

नहीं थे। पाकिस्तान की सीमा से लगे गुजरात के गाँव चोपर में सक्रिय कार्यकर्त्ता जाधवनाथ मेहता ने महसूस किया कि किसी ने झिंझोड़कर जगा दिया था। तड़के सुबह का वक्त था और जाधव भाई उस समय सो रहे थे। गाँव में पंद्रह-बीस परिवार थे। सीमा पार कर अक्सर घुसपैठिए या तस्कर आया करते थे। जाग कर देखा तो दाढ़ी वाले एक अधेड़ पुरुष ने उठने का इशारा किया। जाधव भाई ने सोचा तस्कर ही है, अपना सामान छिपाने के लिए कह रहा होगा। उसकी बात नहीं मानने का मन बनाकर जाधव भाई उठ ही रहे थे कि उस व्यक्ति ने कहा—''ऐ उठ! चौकी लगा, उपवास कर, गुरु का यही आदेश है।''

(क्रमशः)

नहुष को पुण्यफल के बदले इंद्रासन प्राप्त हुआ। वह स्वर्ग में राज्य करने लगे। ऐश्वर्य और सत्ता का मद जिन्हें न आवे, ऐसे कोई विरले ही होते हैं। नहुष भी सत्ता के मद से प्रभावित हुए बिना न रह सका। उसकी दृष्टि रूपवती इंद्राणी पर जा पड़ी। वह उन्हें अपने अंतःपुर में लाने की विचारणा करने लगे। प्रस्ताव उसने इंद्राणी के पास भेज दिया। नहुष की इस मंशा को जानकर इंद्राणी बहुत दुःखी हुईं। राजाज्ञा के विरुद्ध खड़े होने का साहस उनने अपने में न पाया, तो एक दूसरी चतुरता बरती। उनने नहुष के पास संदेश भिजवाया कि वह ऋषियों को पालकी में जोते और उस पर चढ़कर मेरे पास आवे तो ही उसका प्रस्ताव स्वीकार्य होगा। आतुर नहुष ने अविलंब वैसी व्यवस्था की। ऋषि पकड़ बुलाए, उन्हें पालकी में जोता गया। उस पर चढ़ा हुआ नहुष स्वयं ऋषियों पर जल्दी-जल्दी चलने का दबाव डालने लगा। दुर्बलकाय ऋषि दूर तक इतना भार लेकर तेज चलने में समर्थ न हो सके। अपमान व उत्पीड़न से वे क्षुब्ध हो उठे। एक ने कुपित होकर शाप ही दे डाला—''दुष्ट! तू स्वर्ग से पतित होकर पुनः धरती पर जा गिर।'' शाप सार्थक हुआ, नहुष स्वर्ग से पतित होकर मृत्युलोक में दीन-हीन की तरह विचरण करने लगा। इंद्र ने पुनः स्वर्ग का राज सँभाला। उन्होंने नहुष के पतन की सारी कथा ध्यानपूर्वक सुनी और इंद्राणी से पूछा—''भद्रे! तुमने ऋषियों को पालकी में जोतने का प्रस्ताव किस आशय से किया था।'' शची मुस्कराकर बोलीं—''नाथ! आप जानते नहीं, सत्पुरुषों का तिरस्कार करने, उन्हें सताने से बढ़कर सर्वनाश का कोई दूसरा कार्य नहीं। नहुष को उसकी दुष्टता समेत शीघ्र ही नष्ट करने वाला सबसे बड़ा उपाय मुझे यही सूझा और वह सफल भी हुआ।'' देवसभा में सभी ने शची से सहमति प्रकट कर दी। सज्जनों को सताकर कोई भी नष्ट हो सकता है।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

धन्यवाद शब्द कहना हमारी आदत में सम्मिलित हो गया है, परंतु आभार, कृतज्ञता, एहसान आदि ऐसे खूबसूरत शब्द हैं, जिनके अर्थ गहरे होते हैं। इसका अनुभव हम अपने रोजमर्रा के जीवन में करते हैं। इन शब्दों को, इनसे जुड़ी भावनाओं को जब हम अपने जीवन में, अपने कार्यों में उतारते हैं तब ये न सिर्फ हमारे व्यक्तित्व को गौरव प्रदान करते हैं, बल्कि दूसरों को भी खुशी प्रदान करते हैं।

आभार एक ऐसी भावना है, जो जरूरत के वक्त सहायता मिलने के बाद लोगों के बीच उत्पन्न होती है। कृतज्ञता का अनुभव विशेष रूप से तब होता है, जब सहायता प्राप्त करने वाले व्यक्ति को सहायता मूल्यवान लगती है। विनम्रतापूर्ण व्यवहार से एहसानमंद होने का एहसास पैदा होता है।

यह दूसरों के प्रति अपनाए गए हमारे दृष्टिकोण से व्यक्त होता है और हमारे व्यवहार में झलकता है। एहसान का मतलब किसी अच्छाई का एहसान चुकाना नहीं है; क्योंकि एहसान सिर्फ लेन-देन नहीं है। एहसानमंद होने का एहसास हमें आपसी सहयोग और एकदूसरे के प्रति समझ की कला सिखाता है। एहसानमंद होने के एहसास में ईमानदारी होनी चाहिए।

सीधे-सरल शब्दों में 'धन्यवाद' कहकर भी इस भावना को दरसाया जा सकता है। अक्सर लोग अपने बहुत नजदीकी लोगों, जैसे जीवनसाथी, संबंधी, दोस्त आदि के प्रति कृतज्ञता जताना भूल जाते हैं। एक सच्चे और ईमानदार इनसान का चरित्र और व्यक्तित्व बनाने वाले गुणों में एहसानमंद या कृतज्ञ होने के एहसास का दरजा सबसे ऊँचा है, लेकिन ऐसा होने में सबसे बड़ी रुकावट अहंकार पैदा करता है।

एहसानमंद होने का नजरिया जीवन के प्रति हमारे दृष्टिकोण को हमेशा के लिए बदल देता है। एहसानमंद होने के एहसास और विनम्रता के गुणों को यदि हम अपना लेते हैं तो हमारा व्यवहार अपने आप ही सही होने लगता है।

आंतरिक प्रगति को अवरुद्ध करने वाली प्रवृत्तियों में एक प्रमुख यह है कि अच्छी चीजों का श्रेय व्यक्ति खुद लेना चाहता है और बुरी चीजों के लिए दूसरों पर दोषारोपण करता है। ऐसा इसलिए होता है; क्योंकि व्यक्ति अपनी नाकामी एवं असफलता से बचने की कोशिश करता रहता है। वह हमेशा परिस्थितियों को जिम्मेदार ठहराता है और अपने लक्ष्य से दूर भागता रहता है।

हमें इस बात को समझ लेना चाहिए कि जब हम कामयाबी के लिए अपने आप को बधाई का पात्र मानते हैं तो फिर नाकामी की स्थिति में ऐसा क्यों नहीं करते? हमें अच्छी चीजों का श्रेय दूसरों को देना चाहिए और उनकी खामियों की जिम्मेदारी खुद लेनी चाहिए। अपनी तरक्की में दूसरों का योगदान स्वीकारना ही बड़प्पन है। ऐसा तब होता है, जब हम अपनी स्थिति से संतुष्ट हों। हम ऐसा सोचना शुरू कर देते हैं कि हमें किसी की मदद की जरूरत नहीं तो यह हमारी दृढ़ता को दरसाता है। यह हमारा नकारात्मक नजरिया है, जो सकारात्मक चीजों को आने से रोकता है। कुछ लोग दूसरों की तुलना में अधिक कृतज्ञता महसूस करते हैं।

आध्यात्मिकता और आभार के बीच का संबंध हाल ही में हुए लोकप्रिय अध्ययन के आधार पर दिखा। इसमें पाया गया कि आध्यात्मिकता एक व्यक्ति के आभारी होने की क्षमता को बढ़ाने में सक्षम है, इसलिए वे व्यक्ति जो नियमित रूप से धार्मिक सेवाओं में भाग लेते हैं या धार्मिक गतिविधियों में संलग्न रहते हैं, वे जीवन के सभी क्षेत्रों में ज्यादा प्रभावी तरीके से आभार प्रकट कर पाते हैं।

आभार को सभी धर्मों में समान रूप से देखा गया है। सभी धर्मों में भगवान के प्रति आभार प्रकट करके पूजा करना आम बात है। इसलिए आभार की अवधारणा सभी धार्मिक ग्रंथों, शिक्षाओं और परंपराओं में व्याप्त है। इस कारण यह आम भावनाओं में से एक है, जिसे सभी धर्म अपने अनुयायियों में उत्पन्न करना और बनाए रखना चाहते हैं। इसे सार्वभौम धार्मिक भावना माना जाता है।

अनेक अध्ययनों में पाया गया है कि जो लोग अधिक आभारी होते हैं, उनका आत्मिक आनंद का स्तर उच्च होता

है। आभारी लोग ज्यादा खुश, कम उदास, कम थके हुए और जीवन व सामाजिक रिश्तों से अधिक संतुष्ट होते हैं। आभारी लोगों में अपने वातावरण, व्यक्तिगत विकास, जीवन के उद्देश्य और आत्मस्वीकृति के प्रति भी नियंत्रण का स्तर उच्च होता है।

आभारी लोगों के पास जीवन में आने वाली कठिनाइयों का सामना करने के लिए अधिक सकारात्मक तरीके होते हैं। उन्हें अन्य लोगों से समर्थन मिलने की संभावना अधिक होती है। आभारी लोगों के पास सामना करने के लिए सकारात्मक रणनीति भी होती है। समस्या से बचने का प्रयास करने, खुद को दोष देने या लक्ष्य से हटने की संभावना कम होती है।

आभारी लोगों को बेहतर नींद आती है। ऐसा इसलिए होता है; क्योंकि वे सोने से पहले नकारात्मक विचारों के बारे में कम और सकारात्मक विचारों के बारे में ज्यादा सोचते हैं। ऐसा कहा गया है कि आभार का किसी भी चरित्र विशेष के मानसिक स्वास्थ्य के साथ मजबूत संबंध होता है।

कई अध्ययनों से पता चलता है कि आभारी लोगों में खुशी का स्तर अधिक और अवसाद व तनाव का स्तर कम करने की क्षमता होती है; क्योंकि भावनाएँ व्यक्ति के कल्याण के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि आभार भी विशिष्ट रूप से महत्त्वपूर्ण हो सकता है। आभार और कल्याण के मध्य एक अद्वितीय रिश्ता होता है।

एक बार उन लोगों को याद कीजिए, जिनका हमारे जीवन पर अच्छा असर पड़ा हो। ऐसे लोगों में हमारे माता-पिता, शिक्षक या कोई भी दूसरा व्यक्ति हो सकता है, जिसने हमारी सहायता करने के लिए भरपूर समय दिया हो। देखने में शायद ऐसा लगा हो कि उन्होंने केवल अपना कर्त्तव्य निभाया है, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है, उन्होंने हमारे लिए अपनी इच्छा से अपने समय, श्रम, संपदा आदि का नियोजन किया है। उन्होंने हमारे प्रति प्रेम के कारण ऐसा किया, न कि धन्यवाद पाने के लिए।

किसी मोड़ पर जब व्यक्ति इस बात को महसूस करता है कि उसकी जिंदगी को सँवारने में किसने कितनी मेहनत की, शायद उन्हें धन्यवाद देने के लिए अब भी देर नहीं हुई है। आभार ऋणग्रस्तता की तरह नहीं है; जबकि दोनों भावनाएँ मदद के बाद व्यक्त की जाती हैं। ऋणग्रस्तता तब पैदा होती है, जब व्यक्ति मानने लगता है कि उसका दायित्व है कि उसे सहायता हेतु मिले मुआवजे से कुछ चुकाना भी है; जबकि आभार प्राप्तकर्त्ता को अपने संरक्षक की तलाश करने और उनके साथ अपने रिश्ते सुधारने के लिए प्रेरित करता है।

आभार प्रकट करना एक तरह से रिश्तों को सुदृढ़ करना है। एक प्रयोग में पाया गया कि आभूषण की दुकान में ग्राहकों को बुलाकर जब धन्यवाद दिया गया तो उनकी खरीद में 30 प्रतिशत तक की वृद्धि देखी गई। दूसरे अध्ययन में पाया गया कि एक रेस्टोरेंट के नियमित ग्राहक सर्वर को उस समय ज्यादा बड़ी टिप देते हैं, जब सर्वर उनके चेक पर 'धन्यवाद' लिखते हैं।

आभार प्रकट करना हमारी शालीनता, विनम्रता एवं निरहंकारिता का प्रतीक है। अत: हमारे लिए जिसने भी, जो भी, कभी भी, कुछ भी किया हो—उसका हमें अवश्य ही आभार व्यक्त करना चाहिए। ❑

मधुमक्खी शहद जैसे स्वादिष्ट उत्पाद को तैयार करने वाला एक अद्‌भुत जीव है, जो मानव के लिए एक वरदान से कम नहीं। शहद एकमात्र ऐसा आहार है, जिसमें जलसहित जीवन को बनाए रखने के अन्य सारे तत्त्व विद्यमान रहते हैं। इसमें 80 प्रतिशत चीनी और 20 प्रतिशत जल होता है और फिर शहद एक ऐसा उत्पाद है, जो कभी खराब भी नहीं होता। शहद के अतिरिक्त मधुमक्खियों की अन्य कितनी सारी विशेषताएँ हैं, जो इसे एक विशिष्ट जीव बनाती हैं। इसकी पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन में भी विशेष भूमिका रहती है।

मधुमक्खी की श्रमशीलता प्रेरक है। यह नन्हा-सा जीव अपने अथक प्रयास से एक-एक फूल से पराग कणों को इकट्‌ठा कर शहद तैयार करता है। एक पौंड अर्थात 454 ग्राम शहद तैयार करने में झुंड की मधुमक्खियों को 55 हजार मील की यात्रा करते हुए 20 लाख फूलों से शहद इकट्‌ठा करना पड़ता है, जो कि 768 मधुमक्खियों के जीवन भर किए गए परिश्रम के बराबर होता है।

एक मधुमक्खी अपने जीवन काल में चम्मच का 12वाँ हिस्सा ही शहद तैयार कर पाती है और एक मधुमक्खी एक चक्कर में 50 से 100 फूलों तक भ्रमण करती है। इस तरह जिस शहद का हम चटकारा लेते हुए आनंद लेते हैं, उसके बारे में कल्पना कर सकते हैं कि कितनी मधुमक्खियों के अथक श्रम व पुरुषार्थ का यह मुधर फल होता है।

मधुमक्खी का छत्ता जिस सौंदर्यशीलता एवं एकरूपता (सिमिट्री) से बनता है, उसका भी कोई जवाब नहीं। यह इस नन्हे जीव के बेमिसाल इंजीनियरिंग कौशल को दरसाता है, जिसकी नकल अभी वैज्ञानिक प्रगति के चरम पर पहुँचा मनुष्य नहीं कर पाया है। मालूम हो कि मधुमक्खियों की 5 आँखें व 6 टाँगें होती हैं। ये 20 मील प्रतिघंटे की गति से उड़ती हैं।

एक छत्ते में तीन तरह की मधुमक्खियाँ रहती हैं। रानी मक्खी, श्रमिक मक्खी और नर मक्खी, जिसे ड्रोन भी कहा जाता है। इनमें छत्ते का जीवन रानी मक्खी के इर्द-गिर्द केंद्रित रहता है। यह अपने सक्रिय दिनों में 1500 से 2000 तक अंडे देती है। श्रमिक मक्खियाँ फूलों से पराग कण लाकर एकत्रित करती हैं व इससे शहद तैयार करती हैं।

इनमें डंक मारने की क्षमता होती है, साथ ही मरजीवड़ा साहस भी। यदि इन्हें अपने छत्ते पर हमले का खतरा रहता है तो ये डंक मारती हैं, जिसके बाद इनके स्वयं के प्राणपखेरू उड़ जाते हैं। एक तरह से ये अपने छत्ते की रक्षा हेतु स्वयं तक का बलिदान कर देती हैं; जबकि नर मक्खी में डंक नहीं होता, इनकी भूमिका प्रजनन तक सीमित होती है, इसके बाद इनका जीवनकाल समाप्त हो जाता है।

मनुष्य पुण्य के फल (सुख) की तो कामना करते हैं; किंतु पुण्यकर्म करने की इच्छा नहीं करते। जिस पाप के फल (दुःख) को चाहते नहीं; पर पापकर्म प्रयत्नपूर्वक किया करते हैं।

मधुमक्खियाँ सहयोग, सहकार एवं एकता की मिसाल हैं। ये मिल-जुलकर काम करती हैं व सतत संवाद की स्थिति में रहती हैं। इनका जीवन बेहद अनुशासित होता है व ये दिन हो या रात, बारिश हो या बरफबारी, सरदी हो या गरमी, हर समय सक्रिय रहती हैं—बीच के आवश्यक विश्रांतिकाल को छोड़कर। फूलों के परागण में मधुमक्खियों की विशेष भूमिका रहती है। जब ये फूलों से परागण एकत्रित करती हैं, तो कुछ परागण दूसरे फूलों पर गिरते हैं, जिनसे फल तैयार होते हैं। यदि इस धरती पर मधुमक्खियाँ न हों तो हम फल-फूल व वनस्पति जगत् की कल्पना भी नहीं कर सकते। ❑

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 155

अंधविश्वासों पर शोध-अध्ययन
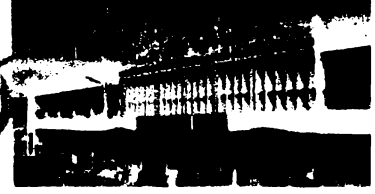
मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में अनेकों ऐसी विडंबनाएँ हैं, जिन्हें हम न तो औचित्य की दृष्टि से सही ठहरा सकते हैं और न ही वैज्ञानिक दृष्टिकोण से। इसमें वे सारी परंपराएँ, धारणाएँ, वहम, व्यवहार और गतिविधियाँ सम्मिलित हैं, जिनके मूल में अंधश्रद्धा एवं अंधविश्वास मौजूद हैं।

हमारे समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग अभी भी अनेक मूढ़मान्यताओं, अंधविश्वासों और औचित्यहीन धारणाओं में जकड़ा है। इस वर्ग में अमीर-गरीब, छोटे-बड़े, शिक्षित-अशिक्षित सभी सम्मिलित हैं। शगुन-अपशगुन, झाड़-फूँक, जादू-टोना-टोटका आदि के रूप में ऐसे अंधविश्वासी व्यवहार को इस आधुनिक कहे जाने वाले समाज में, वैज्ञानिक प्रगति के युग में देखना विडंबनापूर्ण है।

परमपूज्य गुरुदेव के विचारक्रांति-अभियान में कुरीतियों, मूढ़मान्यताओं और अंधविश्वास के निवारण के लिए तथा समाज को सभ्य और सुसंस्कृत बनाने के लिए सप्त आंदोलन की अवधारणा एवं गतिविधियों से प्रत्येक गायत्री परिजन परिचित है।

उन्होंने अंधविश्वास, अंधश्रद्धा जैसी वर्जनाओं से बचने के लिए विश्व मानवता को जो सूत्र एवं संदेश दिया है, वह है—परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देना। परंतु आज के तथाकथित शिक्षित समाज में अंधविश्वासी व्यवहार एवं मान्यताओं को पोषित करने वाली परंपराओं का मौजूद होना यह दरसाता है कि हमारी आस्था, विश्वास और मान्यताओं में विवेकशीलता और वैज्ञानिकता का घोर अभाव है।

अंधविश्वास, अंधश्रद्धा एवं कुरीतियों को पोषित करने वाले कारणों को लेकर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन का कार्य संपन्न कराया गया है। यह शोधकार्य वर्ष-2017 में शोधार्थी मनस्वी श्रीवास्तव द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० अनुराधा कोटनाला के निर्देशन में पूरा किया गया है।

इस वैज्ञानिक एवं प्रायोगिक अध्ययन का विषय है—**'ए स्टडी ऑफ साइको-सोशल फेक्ट्स कॉन्ट्रिब्यूटिंग टू सुपरस्टीशियस बिहेवियर'** अर्थात अंधविश्वासी व्यवहार में मनोसामाजिक कारकों की भूमिका का अध्ययन। शोधार्थी द्वारा अपने प्रयोगात्मक अध्ययन के लिए कोटा चयन विधि द्वारा उत्तर प्रदेश राज्य के कुल 300 लोगों का चयन किया गया। इनमें से 150 ग्रामीण क्षेत्र तथा 150 शहरी क्षेत्र के थे। महिला एवं पुरुषों की संख्या का अनुपात भी इस शोध में समान रखा गया।

इस प्रयोग में सम्मिलित सभी लोगों के लिए शोधार्थी द्वारा जो अनुबंध निर्धारित किए गए थे, वे हैं—व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ हो, वह उत्तर प्रदेश में विगत तीस वर्षों से निवास कर रहा हो, उसकी न्यूनतम शिक्षा बारहवीं तक अथवा उससे ज्यादा हो एवं आयु 20 वर्ष से 40 वर्ष के मध्य हो।

इस प्रयोगात्मक अध्ययन में आँकड़ों के संग्रहण हेतु 'एक्स पोस्ट-फेक्टो' शोध प्रविधि के द्वारा शोधार्थी ने प्रयोगात्मक निरीक्षण कर जिन शोध-उपकरणों का प्रयोग इस शोध में किया, वे इस प्रकार हैं—एम. सिंह (2002) द्वारा निर्मित 'स्ट्रेस-स्केल, रेखा अग्निहोत्री (1987) द्वारा निर्मित 'अग्निहोत्रीस सेल्फ-कॉन्फिडेन्स इन्वेन्ट्री (ASCI)' डॉ० कुमार आनंद एवं एस० एन० श्रीवास्तव (1985) द्वारा निर्मित 'रोट्र्स लोकस ऑफ कंट्रोल स्केल' एवं स्वयं शोधार्थी द्वारा निर्मित 'सुपरस्टीशियस बिहेवियर स्केल।'

उक्त उपकरणों द्वारा परीक्षण कर प्राप्त आँकड़ों का शोधार्थी द्वारा सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया। विश्लेषण के परिणामों के आधार पर यह पाया गया कि मनोसामाजिक कारकों का अंधविश्वासी व्यवहार से अंतर्संबंध है। मानसिक स्तर पर व्यक्ति की धारणाएँ, विश्वास, मान्यताएँ आदि एवं सामाजिक परिवेश में प्रचलित अंधविश्वास की परंपराएँ उसके व्यवहार एवं अन्य क्रियाकलाप को प्रभावित करते हैं।

इस विशेष शोध के तथ्यात्मक परिणाम से यह स्पष्ट हो जाता है कि अंधविश्वासी व्यवहार के पीछे अज्ञान,

अंधश्रद्धा, विवेकशीलता की कमी, भ्रम, वहम, भय, अबौद्धिक परंपराएँ, वैज्ञानिक चेतना का अभाव आदि मनोसामाजिक कारण मौजूद रहते हैं।

अंधविश्वासी व्यवहार की जड़ें मानव सभ्यता के साथ प्राचीनकाल से जुड़ी रही हैं। प्राय: प्रत्येक संस्कृति एवं देशों में अंधविश्वासी व्यवहार की पोषक परंपराओं का पालन करते हैं। कई समाजों में रस्म-रिवाज, परंपरा आदि के रूप में अतार्किक एवं अवैज्ञानिक अंधविश्वासी व्यवहार के क्रियाकलाप देखे जा सकते हैं।

शोधार्थी ने इस अध्ययन में उस दिशा में भी स्पष्ट संकेत किया है, जहाँ से कोई घटना कालांतर में जानकारी व समझ के अभाव में कैसे अंधविश्वास के रूप में परंपरा का रूप लेकर एक बड़े समुदाय अथवा व्यापक स्तर पर मानवीय व्यवहार को प्रभावित करती है। इसी तरह मानवीय व्यक्तित्व में अंतर्निहित कुछ मनोवैज्ञानिक कारण भी हैं, जो ऐसी परंपराओं को जीने एवं आगे बढ़ाने में सहयोगी होते हैं।

जैसे कोई व्यक्ति जब अंधविश्वासी व्यवहार का शिकार होता है तो उसका तनाव स्तर उच्च होता है। कई अप्रत्याशित और अकल्पनीय घटनाओं से उत्पन्न तनाव को भी जब व्यक्ति नियंत्रित करने में असमर्थ रहता है तो वह ऐसे अंधविश्वास से जुड़ी प्रक्रियाओं का सहारा लेता है।

यह भी एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि तनावपूर्ण अवस्था में प्राय: व्यक्ति का आत्मविश्वास स्तर गिर जाता है। ऐसे में अपने आत्मविश्वास के अभाव में व्यक्ति अपने तनाव नियंत्रण के लिए ऐसी किसी भ्रमजन्य गतिविधियों को अपना लेता है, जिनका मूल आधार अंधविश्वास होता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अंधविश्वासी व्यवहार द्वारा स्वयं को पहले से ज्यादा आत्मविश्वासयुक्त महसूस करने लगता है। इस अध्ययन के निष्कर्ष में यह भी देखा गया है कि शहरों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाएँ ज्यादा अंधविश्वासजनित व्यवहार का शिकार होती हैं।

यह अध्ययन इक्कीसवीं सदी के उस विडंबनापूर्ण पहलू को सामने लाता है; जहाँ एक ओर विज्ञान और तकनीकी इस युग का नेतृत्व करते दिखाई देते हैं, परंतु इसी के समांतर ऐसी अंधश्रद्धा, अंधविश्वासयुक्त चीजें व्यक्ति और समाज के भीतर मौजूद अविवेकशीलता, अज्ञान, भय, वैज्ञानिक चेतना के अभाव को उजागर करती हैं। साथ ही विवेकशीलता, वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि और मानवीय चेतना के विकास के हिमायती प्रबुद्ध लोगों के समक्ष चुनौती भी प्रस्तुत करती हैं। चुनौती यही कि पढ़े-लिखे सभ्य और सुसंस्कृत समाज में ऐसी मूढ़-मान्यताओं, कुप्रथाओं, अंधपरंपराओं का समुचित समाधान प्राप्त करने की दिशा में हर स्तर पर प्रयास किए जाएँ। जहाँ कहीं भी ऐसी गतिविधि अथवा व्यवहार दिखाई दे, उसके प्रति सजगता लाने एवं जागरूक करने का भरपूर प्रयास हो।

इस विशिष्ट शोध अध्ययन की प्रेरणाओं के संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि परमपूज्य गुरुदेव ने व्यक्ति और समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, अंधविश्वासों और मूढ़मान्यताओं के निवारण को एक आंदोलन का स्वरूप प्रदान किया है। अखिल विश्व गायत्री परिवार द्वारा इस दिशा में व्यापक गतिविधियाँ संचालित की जाती हैं, जिनमें कोई भी भागीदारी कर सकता है।

कहते हैं कि समुद्रमंथन से निकले विष को भगवान शिव द्वारा पीते समय कुछ बूँदें मिट्टी में गिर पड़ीं। संयोगवश इसी मिट्टी से ब्रह्मा जी मनुष्य शरीरों का निर्माण करते थे। ब्रह्मा जी भूलवश उसी मिट्टी से मनुष्य के शरीर बनाते रहे। विष की बूँदें मनुष्य में ईर्ष्या के रूप में प्रकट हुईं और तभी से मनुष्य ईर्ष्यारूपी विष से जलता आ रहा है।

इस दिशा में पहल करने की आवश्यकता प्रत्येक परिजन और जिम्मेदार नागरिक को है। इसके लिए पहला प्रयास तो यह होना चाहिए कि हम स्वयं कहीं किसी अंधविश्वास अथवा मूढ़मान्यताओं के संवाहक तो नहीं हैं, इस बात को स्वतंत्र चिंतन चेतना से विवेक की कसौटी पर जरूर परखें और दूसरा परमपूज्य गुरुदेव के विचारों के माध्यम से आस-पास के परिवेश में, अपने प्रभाव-क्षेत्र में जागरूकता फैलाएँ। ❑

इच्छाशक्ति से साधें जीवन लक्ष्य

सभी में ईश्वरप्रदत्त इच्छाशक्ति अंतर्निहित है। यदि कोई चाहे तो इसे उस स्तर तक बढ़ा सकता है कि वह एक सार्थक जीवन जी सके, अद्भुत-आश्चर्यजनक उपलब्धियों से जीवन को कृतार्थ कर सके। संभव है कि आपकी इच्छाशक्ति अपनी क्षमता से नीचे चल रही हो, जो जीवन को संतोषजनक उपलब्धियों व सार्थकता की अनुभूति से वंचित कर रही हो।

उचित प्रयास द्वारा इसे सशक्त बनाया जा सकता है और इसका श्रेष्ठतम उपयोग करते हुए अपनी मनचाही मंजिल की ओर बढ़ा जा सकता है। जिस तरह बूँद-बूँद से घड़ा भरता है, ऐसे ही नन्हे-नन्हे प्रयासों के साथ इच्छाशक्ति को सशक्त किया जा सकता है।

देखा जाए तो हम इच्छाशक्ति के आधार पर ही जीवित हैं और अपने अंग-अवयवों का सही उपयोग कर रहे हैं। ईश्वर ने हमें देखने के लिए आँखें दी हैं, लेकिन हम क्या देख रहे हैं या हमें क्या नहीं देखना है—इसका निर्धारण हम स्वयं करते हैं। यहाँ इच्छाशक्ति सक्रिय होती है, जो व्यक्ति के विवेक के साथ जुड़ी होती है। इस तरह यदि कोई कार्य सचेतन रूप से संपन्न हो रहा है तो इसका अर्थ है कि यह इच्छाशक्ति का परिणाम है, अन्यथा इसमें इच्छाशक्ति का अभाव माना जाएगा।

इच्छाशक्ति का शारीरिक स्वास्थ्य से भी सीधा संबंध रहता है। दुर्बल शरीर से इच्छाशक्ति का भरपूर उपयोग नहीं हो पाता और क्योंकि ऐसे में शरीर में मन के निर्णय पर चलने का बल नहीं रहता और बीमारी इस इच्छाशक्ति का क्षरण कर देती है। एक बीमार व्यक्ति को दैनिक जीवन के सामान्य कर्म को करने में ही बहुत प्रयास करना पड़ता है, जिसे एक स्वस्थ व्यक्ति सहज रूप में कर डालता है।

इस तरह बीमारी इच्छाशक्ति को क्षीण कर देती है और व्यक्ति दुर्बल अनुभव करता है। मशीन का एक पुरजा ढीला होने पर जैसे वह सही ढंग से काम नहीं कर पाती, ऐसे ही बीमारी व्यक्ति की शक्ति का हरण कर उसको अधर में लाकर छोड़ देती है।

अत: एक स्वस्थ शरीर में दृढ़ इच्छाशक्ति वास करती है, लेकिन आवश्यक नहीं कि दृढ़ इच्छाशक्ति के लिए स्वस्थ शरीर की आवश्यकता हो। कई चरित्र के धनी एवं महान व्यक्ति हुए हैं, जो शारीरिक रूप से नाजुक स्थिति में रहे या गंभीर रोगों से पीड़ित रहे। बीमारी से उनका जीवन अवश्य प्रभावित रहा, लेकिन उनकी इच्छाशक्ति हमेशा सर्वोपरि रही।

उन्होंने यह सिद्ध किया कि शरीर से अधिक मन की दृढ़ता एवं जीने का उत्साह जीवन की सफलता को निर्धारित करते हैं। जब व्यक्ति का मन संशयग्रस्त हो जाता है और वैचारिक स्पष्टता क्षीण हो जाती है तो उसमें सामान्य इच्छाशक्ति का अभाव हो जाता है।

इच्छाशक्ति विवेक से जुड़ी है व इससे इसका अंतर्संबद्ध है, जो निर्णय करना व इस पर चलना जानती है, लेकिन गहन इच्छाशक्ति हठधर्मी नहीं होती, जो सब कुछ अपने अनुकूल देखना चाहती हो, वास्तविकता से संबंध खो चुकी हो और जिसे यथार्थता का बोध न हो। जबकि इच्छाशक्ति झुकना जानती है, इसमें आवश्यक लचीलापन होता है तथा यह व्यक्ति, परिस्थिति या घटना के अनुरूप स्वयं को ढालना जानती है।

इस तरह इच्छाशक्ति व्यक्तित्व की निर्धारक शक्ति है। यदि यह सबल है तो बाकी चीजें भी ठीक हो जाती हैं, अपने स्थान पर समायोजित हो जाती हैं। इच्छा मात्र चाह नहीं, यह निर्णायक शक्ति है, जिसका मनुष्य के हर अंग-अवयव को आज्ञापालन करना होता है। वस्तुत: इच्छाशक्ति के साथ साहस होता है, दृढ़ता होती है, उसकी कीमत चुकाने का माद्दा होता है और पूरा होने तक इंतजार करने का धैर्य भी होता। मानसिक रोगियों में भी किसी आवेग के अंतर्गत बहुत इच्छाशक्ति के दर्शन हो सकते हैं, लेकिन ये तात्कालिक होती है, जिसमें निर्णय की क्षमता नहीं होती तथा वे स्वयं को वास्तविकता से समायोजित नहीं कर पाते।

इस तरह इच्छाशक्ति व्यक्ति की एक ऐसी विशेषता है, जो मन की स्पष्टता एवं दृढ़ता से उद्भूत होती है एवं अपने

निर्णयों को क्रियान्वित करने की क्षमता रखती है। यथार्थता से तालमेल रखते हुए अपने संकल्प को निष्कर्ष तक ले जाते हुए अपना लक्ष्य सिद्ध करती है। निस्संदेह स्वस्थ शरीर इसका पुष्ट आधार होता है। दृढ़ इच्छाशक्ति के आधार पर व्यक्ति कुछ भी कर सकता है और अपनी संकल्प सृष्टि का सृजन करता है।

दैनिक जीवन में नीचे दिए गए छोटे-छोटे प्रयोग करते हुए इच्छाशक्ति को सशक्त किया जा सकता है, इसे सुदृढ़ बनाया जा सकता है।

नियमित रूप से स्वयं का मूल्यांकन करते हुए, अपने जीवन में स्पष्टता लाने व इसे ईश्वरीय अनुशासन के अनुरूप ढालने का प्रयास करते रहें, इससे इच्छाशक्ति की जड़ें पोषित होंगी। समय पर शयन व प्रातःजागरण इच्छाशक्ति के ही प्रयोग हैं, जिनके आधार पर एक सुव्यवस्थित दिनचर्या संभव होती है। यदि सोने व जागने की आदत बिगड़ी हुई है, तो इसमें नित्यप्रति छोटे-छोटे सुधार करते हुए, इच्छाशक्ति को सुदृढ़ करते हुए आगे बढ़ें।

प्रातःभ्रमण, व्यायाम, स्वाध्याय और जप-ध्यान आदि की नियमित क्रियाएँ तन-मन व अंतर्रात्मा को स्वस्थ व सशक्त रखती हैं व इच्छाशक्ति को पुष्ट करती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि एक अनुशासित जीवनचर्या से इच्छाशक्ति का सीधा संबंध है। आलस्य-प्रमाद से भरा अस्त-व्यस्त जीवन इच्छाशक्ति को क्षीण करता है व दुर्बल इच्छाशक्ति का द्योतक माना जा सकता है।

व्यवहार में सोच-समझकर वाणी का उपयोग इच्छाशक्ति की माँग करता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में कब मौन रहना है, अपने भाव-आवेगों पर नियंत्रण, आवश्यक तप व सहिष्णुता के अभ्यास इच्छाशक्ति के ही प्रयोग हैं। जीवन के द्वंद्वों के बीच सम रहने का अभ्यास इसके उच्चस्तरीय प्रयोग हैं। बिगड़ी आदतों में इसी आधार पर आवश्यक सुधार किए जा सकते हैं और अपने स्वतंत्र चिंतन एवं निर्णयों को क्रियान्वित करते हुए निर्धारित लक्ष्य की ओर बढ़ा जा सकता है।

इस तरह छोटे-छोटे कार्यों में इच्छाशक्ति के प्रयोग करते हुए, जीवन को होशपूर्वक जीते हुए इसे सशक्त बनाया जा सकता है। जीवन के आंतरिक एवं बाह्य पक्षों में संतुलन बिठाते हुए जीवन जीने की कला का अभ्यास किया जाता है तथा ईश्वरप्रदत्त विभूतियों व संसाधनों का श्रेष्ठतम उपयोग करते हुए जीवन में आवश्यक लय एवं संगीत पैदा करते हुए जीवन परम लक्ष्य की ओर बढ़ता है। निस्संदेह जीवन की महायात्रा में हर कदम पर इच्छाशक्ति की ही केंद्रीय भूमिका रहती है। ❑

श्रावस्ती के दो युवकों में बड़ी प्रगाढ़ मैत्री थी। दोनों ही दूसरों की जेब काटने का धंधा करते थे। एक दिन एक स्थान पर भगवान बुद्ध का प्रवचन चल रहा था। अच्छा अवसर जानकर दोनों मित्र वहीं पहुँचे। उनमें से एक को भगवान बुद्ध का प्रवचन बहुत अच्छा लगा और वह ध्यानावस्थित होकर सुनने लगा। दूसरे ने इस बीच कई लोगों की जेब काट ली। शाम को दोनों घर लौटे। एक के पास धन था और दूसरे के पास सद्विचार। जेब काटने वाले ने दूसरे दोस्त पर व्यंग्य कसते हुए कहा—"तू बड़ा मूर्ख है रे, जो दूसरों की बातों से प्रभावित हो गया। अब इस पांडित्य का ही भोजन पका और पेट भर।" अपने पूर्वकृत्य-कर्मों से दुःखी दूसरा गिरहकट तथागत के पास लौटा और उनसे सब हाल कहा। बुद्ध ने समझाया—"वत्स! जो अपनी बुराइयों को पहचानकर उन्हें निकालने का प्रयत्न करता है, वही सच्चा समझदार है; पर जो बुराई करता हुआ भी पंडित बनता है, वह महामूर्ख ही है।"

पर्यावरण संरक्षण एवं भारतीय संस्कृति

भारतीय संस्कृति में 'जियो और जीने दो' का सिद्धांत सर्वोपरि रहा है, जो केवल प्राणियों तक सीमित नहीं। इसमें चर-अचर, जड़-चैतन्य प्रकृति का हर घटक शामिल है। मनुष्य जीवन और प्रकृति के बीच सामंजस्य इसका मूलमंत्र रहा है, जिसमें प्रकृति का अंग बनकर रहने का भाव रहा है कि उससे उतना ही लिया जाए, जितना कि आवश्यक हो। हवा, पानी, पृथ्वी, अग्नि, आकाश जैसे मूलतत्त्वों से सृष्टि की रचना होने के कारण भारतीय दर्शन एवं चिंतन में इनकी शुद्धता एवं प्रदूषणरहितता पर विशेष ध्यान दिया गया है। हंमारी संस्कृति आगाह करती है कि प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने से ही पर्यावरणीय संरक्षण संभव है, जो हमें वर्तमान एवं भविष्य में होने वाले दुष्परिणामों से बचा सकता है।

प्रकृति के साथ सहअस्तित्व, सामंजस्य और सौहार्दपूर्ण मातृभावयुक्त सम्माननीय दृष्टि ही भारतीय संस्कृति का विधान है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने वनों के बीच रहकर जीवन के उच्चतर सत्यों का संधान किया। प्रकृति से हमारा न तो कोई संघर्ष रहा तथा न प्रकृति पर विजय पाने जैसे विचारों से हमारी संस्कृति निर्मित रही। जहाँ विजित-विजेता का, नियंत्रित-नियामक का भाव होगा, वहाँ संघर्ष तो होगा ही। गांधी जी ने उचित ही कहा था कि प्रकृति के पास सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन तो हैं, पर लालसाओं की पूर्ति के नहीं। भारतीय संस्कृति लालसा पर रोक लगाती है, जिससे प्रकृति का दोहन रुक सके।

पर्यावरण के प्रति भारतीय दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए कवि टैगोर कहते हैं कि भारत में वन और प्राकृतिक जीवन मानव जीवन को एक निश्चित दिशा देते थे, मानव जीवन प्राकृतिक जीवन की वृद्धि के साथ निरंतर संपर्क में था। वह अपनी चेतना का विकास आस-पास की भूमि से करता था, उसने विश्व की आत्मा तथा मानव की आत्मा के बीच के संबंध को महसूस किया। मानव और प्रकृति के मध्य के इस तारतम्य ने पर्यावरण को आत्म-अर्पित करने के शांतिपूर्ण एवं बेहतर तरीकों को जन्म दिया।

वस्तुत: भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण के प्रति विशिष्ट भाव अंतर्निहित रहा है। प्रकृति नियमों के अनुरूप जीवन व्यतीत करने की बात करते हुए यजुर्वेद कहता है कि प्रकृति देवी के सौंदर्य को देखो, उससे प्रसन्नता को प्राप्त करो, जो मूर्तरूप में भगवान का काव्य है। अथर्ववेद कहता है कि हे पृथ्वी! तेरी धरती पर विचरण करने वाले सभी छोटे-बड़े प्राणी, जिनमें मनुष्य का भी समावेश हो जाता है, परमपिता परमात्मा के अंश से उत्पन्न हुए हैं। उनको तेरे जल, वायु और सौर ऊर्जा से सुखरूपी पोषण प्राप्त हो।

श्रीमद्भागवत के अनुसार हम सभी परमात्मा के खेल-खिलौने हैं और उनकी रचना को सुंदर व समुन्नत बनाने के लिए विशेष उद्देश्य हेतु भेजे गए हैं। हम सब उस एक परमपिता परमेश्वर से उत्पन्न भाई-भाई हैं, इसके अंग-अवयव हैं। यदि ऐसा भाव रहा तो प्रकृति के प्रति स्व-स्फूर्त संवेदना रहेगी और ऐसे में न ही पर्यावरण प्रदूषण होगा और न ही प्रकृति का दोहन होगा।

इसी तरह शांतिपाठ में पर्यावरण के महत्त्व के भाव ही निहित हैं और साथ ही प्रकृति के कोप से होने वाले भयंकर परिणाम से बचने के उपाय भी। शांतिपाठ के अनुसार—वायु हमारे लिए सुखस्वरूप हो। सूर्य सुखकर होकर तपे। अत्यंत गर्जन करने वाले पर्जन्य देव भी हमारे लिए सुखकर होकर अच्छी तरह से बरसें। द्यौ लोक, अंतरिक्ष लोक और पृथ्वी लोक सुखदायक हों। जल, औषधियाँ और वनस्पतियाँ शांति देने वाली हों, समस्त देवता, ब्रह्म और सब कुछ शांतिदायी हों। जो शांति सर्वत्र विश्व में फैली हुई है, वह सभी को प्राप्त हो। सभी को बराबर शांति का अनुभव होता रहे।

सृष्टि के हर घटक में दैवी आस्था रखने वाली वैदिक संस्कृति में पर्यावरण को तैयार करने वाले पृथ्वी, वायु, जल, आकाश, चंद्र और सूर्य आदि मूलभूत तत्त्वों को देवता की संज्ञा दी गई है। हमारे शरीर व जीवन के पोषण करने वाले इन तत्त्वों के संरक्षण के लिए तन-मन-धन से अर्पित होने का आदेश दिया गया है। इनकी शुद्धि, पवित्रता का भाव

इसमें निहित है, जिसके लिए यज्ञ, हवन आदि करने का निर्देश दिया गया है।

पर्यावरण के महत्त्व को देखते हुए, प्रात:काल पंचतत्त्वों के स्मरण करने का भी यहाँ विधान रहा है। वामन पुराण में भावना की गई है कि पृथ्वी अपनी सुगंध, जल अपने बहाव, अग्नि अपने तेज, अंतरिक्ष अपनी शब्द-ध्वनि और वायु अपने स्पर्श गुण के साथ हमारे प्रात:काल को भी आशीर्वाद दें।

यजुर्वेद की ऋचा भी पर्यावरण के महत्त्व को उद्घाटित करते हुए कहती है कि वे जो नैतिक मर्यादाओं को स्वीकार करने की इच्छा रखते हों, यह वायु उनके लिए सुखकर हो, जलधाराएँ उनके लिए सुखकर हो जाएँ। वनस्पतियाँ नीतिपरायण जीवन जीने वाले हम सबके लिए सुखकर हो जाएँ। रात हमारे लिए सुखकर हो जाए और यह भोर हमारे लिए सुखकर हो। हे सृष्टिकर्त्ता! हमारे लिए पृथ्वी और स्वर्ग सुखकर हो जाएँ। वन देवता हमारे लिए सुखकर हों, सूर्यदेव हमारे लिए सुखकर हो जाएँ और धेनु हमारे लिए सुखकर हों।

वैदिक ऋचाओं के पारायण से स्पष्ट होता है कि प्राचीनकाल में हमारे ऋषिगण प्रकृति व पर्यावरण को कितना महत्त्व देते थे। प्रकृति जीवन को पोषित करती है और स्वस्थ पर्यावरण हमारे अस्तित्व का आधार है, इसे वे बखूबी जानते थे और प्रकृति को परमेश्वरी कहते हुए देवशक्ति के रूप में ऋषिगण इसकी उपासना व अर्चना करते थे।

शांतिकुंज के युग निर्माण आंदोलन के अंतर्गत सप्तसूत्रीय कार्यक्रम के अंतर्गत पर्यावरण संरक्षण एक महत्त्वपूर्ण अभियान है। इसके प्रत्यक्ष रूप में हरीतिमा संवर्द्धन, जलस्रोतों का शुद्धीकरण और परोक्ष रूप में यज्ञ अभियान प्रकृति एवं पर्यावरण संतुलन की अभिनव पहल हैं, जिनमें प्राचीन ऋषियों की वाणी ही ध्वनित होती है।

परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में—प्रकृति के विविध घटकों में परमेश्वर की पराचेतना को अनुभव करें, तभी जंतुओं एवं वनस्पतियों के प्रति संवेदनशील भाव विकसित हो सकेगा। प्रकृति के विभिन्न घटकों के उपयोग की ही नहीं, बल्कि संरक्षण की भी हमारी जिम्मेदारी है। भूजल, जंगल, जमीन, नदियों आदि के प्रति आक्रामक रवैया छोड़कर इनके विकास पर ध्यान दें व इनके प्रति आत्मीयतापूर्ण व्यवहार करें। इसी में प्रकृति एवं पर्यावरण संरक्षण के समाधान-सूत्र निहित हैं, जिसका प्रतिपादन हमारी संस्कृति आदिकाल से करती आ रही है। ❑

बसरा की महिला सूफी संत राबिया की बहुत से लोग भारत के सुप्रसिद्ध संत कबीर से तुलना करते हैं। कबीर की तरह ही राबिया भी उलटबाँसियाँ कहने की आदी थीं और उनकी बातें बहुतों को आसानी से समझ नहीं आती थीं। एक दिन एक व्यक्ति राबिया से बोला—''मैंने सुना है कि जब तकलीफ में कोई किसी का दरवाजा खटखटाता है तो कभी-न-कभी वह दरवाजा खुल ही जाता है।''

राबिया ने जब यह सुना तो वे बोलीं—''जो कभी बंद ही नहीं हुआ, तो उसके खुलने-न-खुलने का प्रश्न ही कहाँ पैदा होता है?'' वह व्यक्ति यह सुनकर आश्चर्यचकित हुआ तो राबिया अपनी बात समझाते हुए बोलीं—''दरवाजे तो लोगों के घर के बंद होते हैं, पर जो तुम्हारे भीतर रहता है, तुम्हारे दिल में निवास करता है, उसका दरवाजा तो सदा खुला हुआ है।''

वह व्यक्ति पूछने लगा कि मेरे दिल में भला कौन निवास करता है तो राबिया बोलीं—''वही, जो सबके दिल में निवास करता है, उसी का नाम परवरदिगार है। उसका दरवाजा किसी के लिए कभी बंद नहीं होता है।''

नरक के द्वार हैं-काम, क्रोध और लोभ

(श्रीमद्भगवद्गीता के देवासुरसंपद्विभागयोग नामक सोलहवें अध्याय की बीसवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के बीसवें श्लोक की व्याख्या इससे पूर्व की किस्त में प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान अर्जुन से कहते हैं कि हे कुंतीनंदन! वे मूढ़ मनुष्य मुझे प्राप्त न होकर जन्म-जन्मांतरों में आसुरी योनि को प्राप्त होते हैं और फिर उससे भी अधिक अधम गति को प्राप्त होते हैं अर्थात भयंकर नरकों में चले जाते हैं। भगवान श्रीकृष्ण यहाँ कह रहे हैं कि ऐसी प्रवृत्ति वाले मनुष्य इतने मूढ़ होते हैं कि जब उनको एक मनुष्य रूप में अवसर मिला था और उस अवसर का सदुपयोग वे परमात्मा को प्राप्त करने में कर सकते थे तो वे उसका दुरुपयोग करके और भी पतनोन्मुख हो जाते हैं। यह एक प्रकार का महती दुर्भाग्य है; क्योंकि परमात्मा तो उनके कर्मों को निर्मल करके आगे बढ़ाना चाहते थे, परंतु वे दुर्भाग्यवश और अधम गति की ओर बढ़ चलते हैं तथा और भी भयंकर नरकों में जा गिरते हैं। इसीलिए भगवान कहते हैं कि 'ततो यान्त्यधमां गतिम्' अर्थात आसुरी योनियों में गिरने पर वे चाहते तो बलि, प्रह्लाद, विरोचन की तरह से अपने कर्मों की शुद्धि करके उच्च पद को प्राप्त कर सकते थे, परंतु वे दुर्भाग्यवश और भी अधम लोकों को प्राप्त हो जाते हैं।

पुराणों में अधम लोकों का, ऐसे स्थानों व भयंकर नरकों का विवरण मिलता है, जिनके विषय में भगवान इस श्लोक में इशारा करते हैं। पहले तो उनमें पृथ्वी के नीचे सात भूविवर का वर्णन आता है, जिनके नाम—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल हैं। इसके बाद कहीं पर इक्कीस तो कहीं पर अट्ठाईस नरकों का विवरण आता है, जिनके नाम तामिस्त्र, अंधतामिस्त्र, दौख, महादौख, कुंभीपाक, कालसूत्र, असिपत्र, सूकरमुख, अंधकूप, कृमिभोज, सर्पदंश, तप्तसूर्म, वज्रकंटक, शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेपादन, अवीचि, अय:पान, क्षारकर्दम, रक्षोगण-भोजन, शूलप्रेत, दंदशूल, अवटारोध, पर्यावर्तन और सूचीमुख बताए गए हैं। इनमें फिर अलग-अलग नरकों में गिरने के कारण और वहाँ मिलने वाली यातनाओं का वर्णन भी आता है। श्रीभगवान कहते हैं कि आसुरी वृत्ति वाले मनुष्य ऐसे अधम लोकों को प्राप्त होते हैं।]

इसके बाद भगवान कृष्ण कहते हैं—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥ *21*॥

शब्दविग्रह—त्रिविधम्, नरकस्य, इदम्, द्वारम्, नाशनम्, आत्मनः, कामः, क्रोधः, तथा, लोभः, तस्मात्, एतत्, त्रयम्, त्यजेत्।

शब्दार्थ—काम (**कामः**), क्रोध (**क्रोधः**), तथा (**तथा**), लोभ (**लोभः**), ये (**इदम्**), तीन प्रकार के (**त्रिविधम्**), नरक के (**नरकस्य**), द्वार (**द्वारम्**), आत्मा का (**आत्मनः**), नाश करने वाले अर्थात उसको अधोगति में ले जाने वाले हैं (**नाशनम्**), अतएव (**तस्मात्**), इन (**एतत्**), तीनों को (**त्रयम्**), त्याग देना चाहिए (**त्यजेत्**)।

अर्थात काम, क्रोध और लोभ—ये तीन प्रकार के नरक के द्वार जीवात्मा का पतन करने वाले हैं, इसीलिए इन तीनों का त्याग कर देना चाहिए। जब मनुष्य के मन में भोगों को प्राप्त करने की इच्छा जन्म लेती है तो 'काम' जन्म लेता है। मात्र काम-वासना ही काम नहीं है, बल्कि हर तरह की

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, तृष्णाएँ, वासनाएँ—काम का ही स्वरूप हैं। इनके संग्रह की इच्छा, इनकी प्राप्ति और इन पर आधिपत्य की कामना 'लोभ' का कारण बनती है।

इन दोनों की प्राप्ति में बाधा उत्पन्न होती है तो वह 'क्रोध' को जन्म देती है। इन तीनों का होना ही आसुरी प्रवृत्ति का आधार है और जहाँ आसुरी वृत्ति है, वहाँ उन नरकों के द्वार जीवात्मा के लिए खुलने लगते हैं, जिनकी ओर इशारा श्रीभगवान ने इससे पूर्व के श्लोक में किया था। सभी तरह के पापकर्मों को करने का आधार यही हैं, इसलिए भगवान कहते हैं कि इन तीनों को सुनिश्चित तौर पर त्याग देना चाहिए।

श्रीभगवान इस श्लोक में आसुरी संपत्ति का आधार क्या है, इस विषय पर चर्चा कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि इसका आधार कामनाएँ हैं। जहाँ कामनाओं के पीछे की दौड़ है, वहाँ पर नरक का द्वार खुल गया है, ऐसा समझना चाहिए। जिनका चिंतन क्षुद्र व संकीर्ण होता है—वे संसार के भोग पदार्थों में आकर्षण को देखते हैं, उन्हीं के संग्रह के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। यही कारण है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—ये षड्रिपु कहकर पुकारे गए हैं। इन्हीं से दूर रहने के लिए इशारा सभी अध्यात्म शास्त्र करते हैं। इसीलिए विवेक चूड़ामणि में आचार्य शंकर कहते हैं कि

मोक्षस्य कांक्षा यदि वै तवास्ति
त्यजातिदूराद्विषयान् विषं यथा।
पीयूषवत्तोषदयाक्षमार्जव-
प्रशान्तिदान्तीर्भज नित्यमादरात्॥ *84*॥

अर्थात यदि तुझे मोक्ष की इच्छा है तो कामनाजनित विषयों को विष के समान दूर से ही त्याग दे। संतोष, दया, क्षमा, सरलता, शम और दम का अमृत के समान नित्य आदरपूर्वक सेवन कर।

इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण ने भी गीता के तीसरे अध्याय में इसी बात को कहा था। जब अर्जुन *3/36* में श्रीभगवान से पूछता है कि यह मनुष्य न चाहते हुए भी जबरदस्ती लगाए हुए की तरह किससे प्रेरित होकर पाप का आचरण करता है तो उसके उत्तर में श्रीभगवान *3/37* में यही कहते हैं कि—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥ *37*॥

अर्थात रजोगुण से उत्पन्न यह काम अर्थात कामना ही पाप का कारण है। यह काम ही क्रोध में परिणत होता है। यह बहुत पापी है। तू इसे ही महावैरी समझ। इसी को आगे बढ़ाते हुए भगवान कहते हैं कि जब तक मनुष्य के भीतर काम है, तब तक उसका निष्पाप होना संभव नहीं और जैसे धुएँ से अग्नि और मैल से दर्पण ढका रहता है तथा जेर से गर्भ ढका रहता है, वैसे ही इस कामना के द्वारा मनुष्य का विवेक ढक जाता है। भगवान कहते हैं कि यह कामना कभी तृप्त नहीं हो सकती और इंद्रियाँ, मन और बुद्धि इस कामना के वास स्थान हैं, इसीलिए वे अर्जुन को कहते हैं कि—हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! तू सबसे पहले इंद्रियों को वश में करके इस ज्ञान और विज्ञान का नाश करने वाले महापापी काम को अवश्य ही बलपूर्वक मार डाल।

उपस्कृतं पुरा यैस्तु तेभ्यो दुःखम् हितम् न हि।
यदा च दियते दुःखम् तदा नाशो भवेदित्॥

अर्थात— उपकारी को दुःख देने वाला मनुष्य अपना ही नाश करता है।

यहाँ पर श्रीभगवान काम, क्रोध और लोभ—तीनों को जीवात्मा का शत्रु बताते हैं; क्योंकि एक अकेला काम ही शेष दो को जन्म देता है। कामनाएँ होती हैं तो उनके ज्यादा-से-ज्यादा संग्रह की इच्छा लोभ में बदल जाती है। प्रचलित लोककथा के अनुसार फिर व्यक्ति निन्यानवे के फेर में पड़ जाता है और जब वे कामनाएँ तृप्त नहीं हो पातीं तो फिर व्यक्ति में क्रोध जन्म लेता है। इसीलिए भगवान दूसरे अध्याय में भी कह रहे हैं कि कामना क्रोध को जन्म देती है, क्रोध सम्मोह को जन्म देता है (*2/62* एवं *2/63*) जब ये सब आ जाएँ तो व्यक्ति पूर्णरूपेण आसुरी वृत्तियों से घिर उठता है और पतन का द्वार उसके लिए खुल जाता है।

यही कारण है कि श्रीभगवान कहते हैं कि ये तीनों 'नाशनमात्मनः' जीवात्मा का नाश करने वाले हैं। अतः इनको नरक का द्वार मानकर इनका त्याग कर देना चाहिए। (क्रमशः)

भारतीय संस्कृति में चारों आश्रमों में गृहस्थ मुख्य केंद्र में रहा है। ऋषि वसिष्ठ के शब्दों में—**गृहस्थ एवं यजते गृहस्थस्तप्यते तपः** अर्थात गृहस्थ ही वास्तविक रूप से यज्ञ करते हैं। गृहस्थ ही वास्तविक तपस्वी हैं। इसलिए चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम ही सबका सिरमौर है, इन सबका आधार है।

भारतीय चिंतन में गृहस्थाश्रम की यह महिमा अकारण नहीं है। परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में—गृहस्थाश्रम विषय भोग की सामग्री नहीं है, स्वार्थमयी लालसा और पापमयी वासना का विलास मंदिर नहीं, वरन दो आत्माओं के पारस्परिक सहवास द्वारा शुद्ध, आत्म सुख, प्रेम और पुण्य का पवित्र प्रसाद है, वात्सल्य और त्याग की लीलाभूमि है, निर्वाण प्राप्ति के लिए शांति कुटीर है। इस तरह गृहस्थ भोगभूमि नहीं, बल्कि एक तपोवन है, जिसमें विवाह संस्कार के महत्त्वपूर्ण पड़ाव के माध्यम से प्रवेश किया जाता है।

विवाह से मनुष्य समाज का एक अंग बनता है, अपूर्णता से पूर्णता प्राप्त करता है, निर्बलता से सबलता की ओर अग्रसर होता है। उसे नए संबंध, नए उत्तरदायित्व और नए आनंद प्राप्त होते हैं। भारतीय ऋषियों ने गृहस्थाश्रम को अनेक व्रत, नियम, अनुष्ठान, आतिथ्य-सत्कार इत्यादि पुण्य कर्त्तव्यों से जोड़कर उसकी महिमा को बहुगुणित किया है। उन्होंने पारिवारिक व्यवस्था में प्रेम और वात्सल्य तथा दूसरी ओर अपने से छोटों के लिए उन्हीं के हित में त्याग तथा तपस्या के द्वारा इसे तपोभूमि के समान पवित्र बना दिया है। वस्तुतः सनातन धर्म गृहस्थ के माध्यम से प्रवृत्ति से निवृत्ति का पथ प्रशस्त करता है, जिसमें स्त्री व पुरुष द्वारा सतीत्व एवं पत्नीव्रत के आदर्श का पालन किया जाता रहा है।

यह एक ज्ञात तथ्य है कि गृहस्थ में प्रवेश न होने वाले अधिकांश व्यक्ति अनेक प्रकार के मानसिक रोगों का शिकार बनते हैं। इनकी आयु कम रहती है, मानसिक भावनाएँ विकसित नहीं हो पातीं, संसार के महत्त्वपूर्ण कार्यों में जी नहीं लगता, मन विपरीत लिंग के प्रति विकारग्रस्त रहता है। अविवाहित पुरुष की उत्पादन शक्ति क्षीण होती है। जबकि विवाह से उसे नया चाव, उत्साह, स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त होती है। इसी प्रकार अविवाहित स्त्री कुढ़न, अनिद्रा, प्रमाद, चिंता, हिस्टीरिया, प्रजनन की गुप्त भावना, स्वार्थी व क्रोधी हो जाती है। जबकि विवाहित स्त्री के सौंदर्य में निखार आता है व उसमें दया, प्रेम, सहानुभूति, वात्सल्य, करुणा जैसी मृदुल भावनाओं की अभिवृद्धि होती है।

गृहस्थ में प्रवेश के साथ परिवार-व्यवस्था में व्यक्तित्व विकास के नए आयाम जुड़ते हैं, जिसमें संयुक्त परिवार की विशेष भूमिका रहती है। वस्तुतः परस्पर सहयोग की भावना आदिकाल से ही मनुष्य जाति की उन्नति का मूल कारण रही है। यही बात परिवार पर लागू होती है। वे ही परिवार उन्नति कर सकते हैं, जिनमें पारस्परिक सहयोग, संगठन, एकता और सद्भाव रहते हैं। इनके आधार पर संयुक्त परिवार में सुख-शांति और सफलताओं में आश्चर्यजनक रीति से अभिवृद्धि होती है।

संयुक्त परिवार में खरचे भी कम होते हैं। अलग-अलग चूल्हे जलने पर अधिक खरचा तय है। यदि चार भाई एक साथ रह सकते हैं तो चार मकानों की जगह एक ही मकान से काम चल जाता है। अतिरिक्त सजावट, फर्नीचर, फर्श आदि की आवश्यकता नहीं रहती। अतिथियों के स्वागत में भी सरलता रहती है। नौकर, रसोइया, मेहतर, चौकीदार आदि में भी कम खरच होता है। गाँव में अलग-अलग गौ पालने की जगह एक ही गोशाला से काम चल सकता है। एकदूसरे के श्रेष्ठ आचरण व अनुशासित दिनचर्या के प्रभाव से कई तरह के नशे, कुटेव, दुर्व्यसनों व दुर्गुणों आदि से सहज ही बचा जा सकता है।

संयुक्त परिवार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शिक्षण के साथ संस्कारशाला का काम करता है, जिसमें बच्चों की तोतली बातें, माता-पिता का वात्सल्य, भाई-बहनों का निश्छल प्रेम, पत्नी का आत्मीय स्पर्श, बुजुर्गों का आशीर्वाद सहज रूप में उपलब्ध रहता है।

एक तरह से विविध भावों का रुचिकर थाल सामने रहता है, जिसे ग्रहण कर मानसिक क्षुधा तृप्त हो जाती है। दादा-दादी, नाना-नानी की कहानियाँ, छोटे बच्चों का खेलना, बाल विनोद, महिलाओं के गीत-संगीत, गृहकार्य, घर मालिक के मेहमानों से वार्त्तालाप, बुजुर्गों की धर्मचर्चा एक रोचक व प्रेरणादायक वातावरण तैयार करते हैं। संयुक्त परिवार आपत्ति में ढाल की तरह काम करते हैं। रोगी होने पर सेवा-शुश्रूषा व रोगमुक्ति की तमाम व्यवस्था सहज रूप में हो जाती है। साथ ही वृद्धावस्था संतोष से कट जाने का आश्वासन रहता है। बच्चे, बूढ़े, विधवा, अपंग, असहाय, पागल परिजनों के लिए एक निश्चिंत आश्रय उपलब्ध रहता है।

बच्चों के लिए तो सम्मिलित परिवार प्राथमिक पाठशाला की तरह है। साथ-साथ में खेलने-कूदने से शारीरिक स्वास्थ्य पुष्ट होता है तथा मानसिक विकास गति पकड़ता है। बड़े-बुजुर्गों से कुछ-न-कुछ सीखने को मिलता है। ऐसे घरों की लड़कियाँ अधिक चतुर, सुसंस्कृत एवं व्यवहारकुशल पाई गई हैं। प्राय: अकेली संतान अधिक लाड़-प्यार में पलने के कारण इन लाभों से वंचित रह जाती है व कई तरह की कमियों से ग्रसित पाई जाती है। ऐसे में पूर्ण विकास कुछ अवरुद्ध-सा रह जाता है। पृथक रहकर बच्चे उतना विकास नहीं कर पाते, जितना सुशिक्षित, सुसंस्कृत व सात्त्विक प्रकृति के सम्मिलित परिवार में होता है।

सामाजिक दृष्टि से संयुक्त परिवार अधिक प्रतिष्ठित माना जाता है। चार व्यक्तियों की सम्मिलित जनशक्ति देखकर विरोधियों के हौंसले पस्त हो जाते हैं और मित्र आकर्षित होते हैं। परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ती है। सामूहिक शक्ति का बल प्रत्येक सदस्य में रहता है। बाहर से कोई विपदा आने पर इस शक्ति के बल पर सभी आत्मविश्वासपूर्ण प्रतिकार करते हैं व इसको परास्त करने का साहस रखते हैं। अलग-थलग रहने पर जो वास्तविक शक्ति-सामर्थ्य होती है, वह भी न्यून हो जाती है। ऐसे परिवार का सामाजिक मूल्यांकन हलका रहता है। ऐसे में समाज या राष्ट्रसेवाहित में किसी महान त्याग की आशा नहीं की जा सकती; क्योंकि अकेला व्यक्ति अपने ही परिवार के पालन-पोषण व आश्रितों की देख-सँभाल तक सीमित रह जाता है।

संयुक्त परिवार में संयम, निस्स्वार्थ सेवा, सहिष्णुता, त्याग, कर्त्तव्यपरायणता जैसे सद्‌गुणों के अभ्यास का अवसर मिलता है। माता-पिता, भाई-बहन, सास-ननद, जेठानी, दादा-दादी, नाना-नानी आदि के रिश्तों से जुड़े कर्त्तव्य संयुक्त परिवार में ही निभाने संभव होते हैं। इसमें जहाँ छोटों को बड़े-बुजुर्गों के अनुभव का लाभ मिलता है, उनका वात्सल्य सिंचित करता है तो वहीं बड़ों को भी छोटों के सम्मान, सेवा-सत्कार का लाभ सहज रूप में मिलता है। भावनात्मक पोषण के लिए सम्मिलित परिवार एक आदर्शस्थल रहता है। इसमें पला-ब़ढ़ा बचपन भावनात्मक रूप से पुष्ट रहता है, जिसकी यादें ताउम्र शक्तिस्रोत के रूप में साथ देती हैं।

संयुक्त परिवार एक तरह का धर्मक्षेत्र है, जिसमें निस्स्वार्थ सेवा करते हुए नाना प्रकार के पुण्यलाभ का अर्जन होता है। इसे प्रभुसेवा मानते हुए आध्यात्मिक लाभ लिया जा सकता है। परिवार को परमेश्वर द्वारा सौंपा गया उद्यान मान सकते हैं, जिसकी हमें एक माली की भाँति देख-भाल करनी है, सिंचन करना है। इसमें कर्त्तव्यपालन एक योग-साधना जैसा है, जिसका आत्मिक लाभ सुनिश्चित है।

इसमें अपने निजी स्वार्थ का अपने माता-पिता, स्त्री-पुत्र, भाई-बहनों व अन्य परिजनों तक विस्तार करने पर अहंभाव का स्वाभाविक रूप में विस्तार होता है। इस अभ्यास को आगे **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** एवं **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** तक प्रसारित करने पर सबमें आत्मा-परमात्मा के दर्शन तक किए जा सकते हैं। यदि ऐसा बन पड़ा तो समझो कि जीते जी जीवनमुक्ति का परम लाभ हस्तगत हो चला।

इस तरह संयुक्त परिवार एक सुदृढ़ गढ़ की तरह हैं, जिनमें सबकी सुरक्षा से लेकर, भावनात्मक विकास एवं सर्वतोमुखी उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है। खेद का विषय है कि आज संयुक्त परिवार कलह और मनोमालिन्य के शिकार होते जा रहे हैं, जिसमें मुखिया की कमजोरियाँ प्रमुख कारण रहती हैं। मुखिया से परिवार के कुशल संचालन से लेकर सुलझे हुए नेतृत्व की आशा की जाती है, जो सब पक्षों की सुनकर निष्पक्ष निर्णय ले सके व आने वाली कठिनाइयों का अनुमान लगाकर बच्चों, युवाओं, स्त्रियों व सभी परिवार सदस्यों के उचित विकास के साथ योग-क्षेम के वहन की व्यवस्था कर सके और प्यार-प्रोत्साहन से लेकर डाँट-फटकार के उपयुक्त सुधारात्मक उपायों के साथ सबको सन्मार्ग पर ले जा सके। ❑

महाभारतकालीन अर्थव्यवस्था

महाभारत काल की अर्थव्यवस्था अत्यंत सुव्यवस्थित थी। इसे देखकर आश्चर्य होता है कि उस समय आर्थिक विषयों पर भी इतना सुंदर विवेचन होता था। प्राचीनकाल में भारत दरिद्र नहीं रहा। आज जैसी दयनीय, शोचनीय दशा उसकी कभी नहीं रही। हम धन को ही राज्य-व्यवस्था का मूल आधार मानते रहे हैं।

इस संबंध में महाभारत का एक प्रसंग उल्लेखनीय है। महाभारत के युद्ध के पश्चात अधिकांश सगे-संबंधियों के मारे जाने पर महाराज युधिष्ठिर को वैराग्य हो गया। उन्होंने कहा—''मैंने राज्य और धन-संग्रह की इच्छा रखकर पाप ही बटोरा है। मुझे ऐसे राज्य और लक्ष्मी की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं वन में चला जाऊँगा।''

यह सुनकर अर्जुन ने उन्हें समझाया—''आपके राज्य त्याग देने पर यज्ञ की इन संचित सामग्रियों को दुष्ट लोग नष्ट कर देंगे। आपको आदर्श मानकर जनता भी यज्ञ आदि कर्मों से उदासीन हो जाएगी। तब धार्मिक कृत्यों का उन्मूलन हो जाएगा और इसका पाप आपके सिर पर लगेगा। इस जगत् में निर्धनता को धिक्कार है। सर्वस्व त्यागकर प्रजा के भविष्य की चिंता न करके निर्धन और दरिद्र बन जाना मुनियों का धर्म है, शासकों का नहीं। जिसे शासकों का धर्म कहा गया है, वह धन द्वारा ही संपन्न होता है। जैसे हिमाच्छादित पर्वतों से बहुत-सी नदियाँ बहती रहती हैं, उसी प्रकार बढ़े हुए संचित धन से सब प्रकार के शुभ कर्मों का आरंभ होता है। धन से धर्म, धर्म से काम और मोक्ष की सिद्धि होती है। जहाँ धन नहीं रहता, वहाँ धर्म भी नहीं रहता।''

महाभारत में वाणिज्य को प्रोत्साहन दिया गया। इस प्रकार महाभारतकालीन शासक, कार्ल मार्क्स की भाँति धन को सब बुराइयों की जड़ नहीं मानते थे। वे राज्य के लिए धन को अत्यंत महत्त्वपूर्ण समझते थे। शासकों को धन की प्राप्ति मुख्यत: करों द्वारा ही होती थी और कर व्यवसाय के द्वारा प्राप्त होते थे। उस समय चार व्यवसाय मुख्य रूप से थे—कृषि, पशुपालन, शिल्प और वाणिज्य।

इस प्रकार के व्यवसाय करने वालों को तीन प्रकार से प्रोत्साहित किया जाता था—व्यवसाय के विस्तार की पूर्ण सुविधा देकर, समुचित करों द्वारा और समृद्ध व्यक्तियों का आदर-सत्कार करके।

राजधर्म अनुशासन पर्व में भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर को राज्य की समृद्धि का रहस्य बताते हुए उपदेश दिया—''मनुष्य लाभ के लिए ही कर्म में प्रवृत्त होते हैं। लाभ और कर्म आदि निष्प्रयोजन हुए तो कोई काम करने में प्रवृत्त नहीं होगा। अत: जिस उपाय से शासक और कार्यकर्त्ता, दोनों को कृषि, वाणिज्य आदि कर्म से लाभ का भाग प्राप्त हो—उस पर विचार करके शासक को सदैव करों का निर्धारण करना चाहिए।''

कर निर्धारण की विधि बताते हुए उन्होंने आगे कहा था कि शासक को माल की खरीद, बिक्री, उनके मँगाने का खरच, उनमें काम करने वाले कर्मचारियों के वेतन, बचत और योगक्षेम के निर्वाह को ध्यान में रखकर ही व्यापारियों पर कर लगाना चाहिए। सोना, चाँदी, ताँबे, राँगे की खानें, नमक व अनाज की मंडी, नाव के घाट तथा हाथियों के यूथ—इन सब स्थानों पर होने वाली आय के निरीक्षण के लिए योग्य मंत्रियों को तथा राज्य का हित चाहने वाले विश्वसनीय पुरुषों को शासक नियुक्त करना चाहिए।

उस समय शिल्प कितनी उन्नति पर था, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उस समय स्तर-नियंत्रण (क्वालिटी-कंट्रोल) के मापदंड भी निर्धारित किए गए थे। भीष्म पितामह ने स्तर नियंत्रण की ओर संकेत करते हुए कहा था—''हे युधिष्ठिर! शासक को माल की तैयारी, उसकी खपत तथा शिल्प की उत्तम, मध्यम और अधम श्रेणियों का समय-समय पर निरीक्षण करके शिल्प एवं शिल्पकारों पर कर लगाना चाहिए। राष्ट्ररूपी गाय का प्रेमपूर्वक दोहन होना चाहिए।''

न्यायोचित कर-व्यवस्था की आवश्यकता बताते हुए भीष्म पितामह ने आगे कहा—''हे भरतनंदन युधिष्ठिर! जिस गाय का दूध इस प्रकार दुहा जाता है कि बछड़े के

लिए भी पर्याप्त दूध बच जाता है, उसका बछड़ा दूध पीकर पुष्ट एवं बलवान होकर दीर्घकाल तक भारी भार वहन करने में समर्थ होता है, परंतु जिस गाय का दूध इस प्रकार दुह लिया जाता है कि जिससे बछड़े के लिए दूध शेष नहीं रहता, उसका बछड़ा कमजोर होने के कारण आवश्यकता पड़ने पर भार-वहन करने में समर्थ नहीं हो पाता।''

''उसी प्रकार राष्ट्र का भी अधिक कर द्वारा दोहन करने से वह दरिद्र हो जाता है और इस कारण कोई महान कार्य नहीं कर पाता। भौंरा धीरे-धीरे फूलों का रस लेता है, फूलों की पंखड़ियों और पराग को नष्ट नहीं करता। मनुष्य गाय को कष्ट न देकर उसे धीरे-धीरे प्रेम से दुहता है, उसके थनों को कुचल नहीं डालता, ठीक उसी प्रकार कोमलता के साथ ही शासक को राष्ट्ररूपी गौ का दोहन करना चाहिए।''

शासक को किस प्रकार के विधान से धन-संग्रह करना चाहिए, इसकी चर्चा करते हुए भीष्म पितामह ने कहा था—''प्रजा की आय का छठा भाग कर के रूप में ग्रहण करके, उचित शुल्क या टैक्स लेकर, अपराधियों को आर्थिक दंड देकर, शास्त्र के अनुसार व्यापारियों की रक्षा आदि करने के कारण उनसे विशेष शुल्क लेकर इन्हीं उपायों और मार्गों से शासक को धन की इच्छा करनी चाहिए।''

व्यापारियों का रक्षण, पोषण और प्रोत्साहन—महाराज युधिष्ठिर द्वारा व्यापारियों के रक्षण, पोषण और प्रोत्साहन के उपाय पूछने पर भीष्म ने उत्तर दिया था—''हे कुंतीनंदन! यदि शासक व्यापारियों के हानि-लाभ की परवाह न करके उन्हें कर-भार से विशेष कष्ट पहुँचाता है तो वे राज्य छोड़कर भाग जाते हैं और शासक उनसे होने वाले लाभ से वंचित हो जाता है।

''शासक को चाहिए कि वह व्यापारियों को सांत्वना दे, उनकी रक्षा करे, उन्हें धन की सहायता करे, उनकी स्थिति को सुदृढ़ रखने का बार-बार प्रयत्न करे, उन्हें आवश्यक वस्तुएँ अर्पित करे और सदा उनके प्रिय कार्य करता रहे। हे भारत! व्यापारियों को उनके परिश्रम का फल सदा देते रहना चाहिए; क्योंकि समृद्ध व्यापारियों के कारण ही राष्ट्र समृद्ध कहलाता है। अतिबुद्धिमान शासक सदा व्यापारियों पर यत्नपूर्वक प्रेम बनाए रखे। उनके साथ दयालुता का व्यवहार करे और उन पर हलके कर लगाए।

''हे युधिष्ठिर! शासक को व्यापारियों की सुरक्षा का प्रबंध करना चाहिए, जिससे वे देश में सब ओर कुशल पूर्वक विचरण कर सकें। शासक के लिए इससे बढ़कर व हितकर काम दूसरा नहीं। हे भरतनंदन! धनी लोग राष्ट्र के मुख्य अंग होते हैं। शासक का कोष धनवान ही अपने करों द्वारा भरते हैं। धनवान पुरुष समस्त प्राणियों में प्रधान होता है, इसमें संशय नहीं।

''लुटेरों, भ्रष्टाचारियों और भिखारियों को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। लुटेरों, भिखमंगों, जुआरियों और भ्रष्ट कर्मचारियों से सावधान करते हुए भीष्म पितामह ने आगे कहा कि हे युधिष्ठिर! तुम्हारे राज्य में भिखमंगे, जुआरी, चोर और लुटेरे न हों; क्योंकि ये प्रजा के धन को छीनने वाले होते हैं, उनका ऐश्वर्य बढ़ाने वाले नहीं।

''बहुत पहले, मनु महाराज ने समस्त प्राणियों के लिए यह नियम बना दिया है कि अत्यंत आपत्तिकाल को छोड़कर अन्य समय में कोई किसी से कुछ नहीं माँगे। यदि ऐसी व्यवस्था न होती तो सब लोग कर्म करने की अपेक्षा भीख माँगकर गुजारा करते। फिर कोई कर्म नहीं करता और फिर कोई भीख देने वाला भी शेष नहीं रहता। ऐसी दशा में संपूर्ण जगत् के लोग निस्संदेह नष्ट हो जाते। इसलिए भीख को कभी प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए।''

भीष्म पितामह ने आगे चलकर कहा—''हे राजन्! जो राजकर्मचारी आवश्यकता से अधिक कर वसूल करते हों, वे तुम्हारे हाथ से दंड पाने योग्य हैं। तुम्हारे राज्य में राज्य की उन्नति करने वाले रहें, द्रोह करने वाले न रहें। तुम लालची, भ्रष्ट और मूर्ख मनुष्यों को धन-प्राप्ति के साधनों में मत लगाओ। जो लोभरहित और बुद्धिमान हों, उन्हीं को कर वसूल करने के कार्यों पर नियुक्त करना चाहिए; क्योंकि मूर्ख, लोभी और भ्रष्ट मनुष्य को यदि धन-संग्रह का अधिकारी बना दिया जाता है तो वह अनुचित और अन्यायपूर्ण उपायों से प्रजा को कष्ट पहुँचाता है, जिससे प्रजा की व्यापार आदि कार्यों में रुचि नहीं रह जाती और राष्ट्र उससे प्राप्त होने वाले कर से वंचित रहता है।

''जो रक्षा करने योग्य पुरुषों की रक्षा करता है, वही शासक समस्त शासकों में शिरोमणि होता है। जो रक्षा के पात्र मनुष्य, विद्वान, धनवान, शूरवीर, धर्मनिष्ठ, स्वामी, सत्यवादी आदि की रक्षा नहीं करते, उन नाममात्र के शासकों की जगत् को कोई आवश्यकता नहीं। शासक की नियुक्ति

प्रजा के प्राण और धन-संपत्ति की रक्षा के लिए होती है। जो शासक पापियों को, जनता के प्राण हरण करने वालों को, उन्हें लूटने वालों को कष्ट देकर नियंत्रण में नहीं रखता, वह स्वयं पापाचारी माना जाता है, उसे राजलक्ष्मी त्याग देती है।''

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि उस समय के शासक केवल शूरवीर ही नहीं होते थे, बल्कि अर्थशास्त्र के भी ज्ञाता होते थे। वे इस बात को भली भाँति जानते थे कि राज्यकोष शासन का आधार है, कोष की वृद्धि कर द्वारा होती है, कर व्यापारियों द्वारा प्राप्त होता है, व्यापारियों को प्रोत्साहन देना राज्य का कोष भरना है। वे आजकल की भाँति प्रत्येक व्यापारी को चोर नहीं समझते थे। धन आदर और सम्मान का कारण होता था; आलोचना, उपेक्षा या प्रताड़ना का कारण नहीं। वे आज के शासकों की भाँति व्यापारियों को धमकियाँ नहीं दिया करते थे, जैसा यदा-कदा उद्योगपतियों और व्यापारियों के बारे में कहा जाता है कि उद्योगपति और व्यापारी आर्थिक विकास में आवश्यक योगदान नहीं दे रहे हैं, इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। उद्योगपति व व्यापारी परिवर्तनों (संपत्ति का सब में समान वितरण) का विरोध न करें, अन्यथा उनका सब कुछ समाप्त हो जाएगा। दंड से सभी समाधान नहीं मिलते हैं। दंड को केवल अति आवश्यक रूप से ही प्रयोग करना चाहिए।

इस दृष्टि से देखें तो महाभारतकालीन अर्थ दर्शन अत्यंत समृद्ध है और यह आज भी उतना ही प्रासंगिक है। ❑

एक युवा ब्रह्मचारी देश-विदेश का भ्रमण कर और वहाँ के ग्रंथों का अध्ययन करके जब अपने देश लौटा तो सबके सामने इस बात की शेखी बघारने लगा कि उसके समान अधिक ज्ञानी विद्वान और कोई नहीं। उसके पास जो भी व्यक्ति जाता, वह उससे प्रश्न किया करता कि क्या उसने उससे बढ़कर कोई विद्वान देखा है? बात बुद्ध के कानों तक जा पहुँची। वे ब्राह्मण वेश में उसके पास गए। ब्रह्मचारी ने उनसे पूछा—''तुम कौन हो?''

बुद्ध बोले—''अपनी देह और मन पर जिसका पूर्ण अधिकार है, मैं ऐसा एक तुच्छ मनुष्य हूँ।'' ब्रह्मचारी पुनः बोला—''भली भाँति स्पष्ट करो। मुझे कुछ समझ नहीं आया।'' बुद्ध बोले—''जिस तरह कुम्हार घड़े बनाता है और नाविक नौका चलाता है, गायक गीत गाता है, वादक वाद्य बजाता है और विद्वान वाद-विवाद में भाग लेता है, उसी तरह ज्ञानी पुरुष स्वयं पर शासन करता है।''

ब्रह्मचारी बोला—''ज्ञानी स्वयं पर शासन कैसे करता है?'' बुद्ध ने समझाया—''लोगों द्वारा स्तुति-सुमनों की वर्षा किए जाने पर अथवा निंदा के अंगार बरसाए जाने पर भी ज्ञानी पुरुष का मन शांत ही रहता है। उसके चित्त में शांति की धारा बहती रहती है।'' उस ब्रह्मचारी ने जब अपने बारे में सोचा तो उसे आत्मग्लानि हुई और वह बुद्ध के कदमों पर गिरकर बोला—''स्वामी! अब तक मैं भूल में था। मैं स्वयं को ही ज्ञानी समझता था, परंतु ज्ञानी तो आप हैं; मुझे अपनी शरण में ले लीजिए।'' वह ब्रह्मचारी उनके साथ मठ चला गया और उनका शिष्य बन गया।

मनुष्य में देवत्व का उदय (उत्तरार्द्ध)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमवंदनीया माताजी अपने इस सामयिक उद्बोधन में शांतिकुंज एवं गायत्री परिवार की स्थापना के मूल उद्देश्य—'मनुष्य में देवत्व का उदय, धरती पर स्वर्ग का अवतरण' विषय की व्याख्या करते हुए कहती हैं कि मनुष्य में सन्निहित दैवी संभावनाओं का जागरण ही गायत्री परिवार का प्रमुख उद्देश्य है। वंदनीया माताजी सभी श्रोताओं को चेताती हैं कि पूज्य गुरुदेव ने इसी उद्देश्य को साकार करने का स्वप्न देखा था, जिसे मूर्त रूप प्रदान करना ही गायत्री परिवार का सर्वोपरि लक्ष्य है। वे देवत्व को परिभाषित करते हुए बताती हैं कि देवत्व का अर्थ देने के भाव से है। जो व्यक्ति देना एवं बाँटना जानता है, वह देवता बन जाता है। दया, करुणा एवं मानवता जैसे गुणों का अभिवर्द्धन ही गायत्री परिजनों का लक्ष्य होना चाहिए। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

संकल्प की शक्ति

बेटे! संकल्प में बहुत शक्ति होती है। जो व्यक्ति संकल्प लेकर कमर कस करके जब खड़ा हो जाता है, तो दुनिया की कोई भी हस्ती ऐसी नहीं है, जो उसे रोक सके। जो कोई उसे झुका सके। जो हमारे पथ से हमको झुका सके। ऐसी कोई शक्ति पैदा हुई है क्या? कोई शक्ति पैदा नहीं हुई। अगर कोई है तो हम ही अपने शत्रु हैं और हम ही अपने मित्र हैं। हम ही अपने को ऊँचा उठा सकते हैं और हम ही अपने को नीचे गिरा सकते हैं।

यदि आप नीचे गिरेंगे, तो गिरते ही चले जाएँगे और जो कोई भी आएगा, आपको धिक्कारता हुआ चला जाएगा। जो कोई भी आएगा, आपको लात-घूँसे देता चला जाएगा; क्योंकि आप गिर चुके हैं और गिरे हैं तो गिरते ही चले जाएँगे। बेटे! उठते हुए को सब उठाते हुए चले जाते हैं। आपको शीरी और फरहाद का किस्सा तो याद होगा, जो शीरी के लिए फरहाद बना था, यही कहता था; जबकि उसके पिता ने यह कह दिया था कि इस पहाड़ को तोड़कर जो कोई नहर निकाल देगा, उसके साथ में मैं अपनी कन्या की शादी करूँगा। फरहाद गरीब था, अतः उससे शादी करनी ही नहीं थी। उसने कहा कि यह मरमरा जाएगा, न यह नहर लाएगा और न इसके साथ शादी होगी।

बेटे! उसने कहा—"अच्छा तो हम लाएँगे।" किसी ने उसे पागल कहा, तो किसी ने क्या कहा। जो समझदार आदमी थे, उन्होंने कहा—"भाई! चाहे जो भी हो इस लड़के की संकल्पशक्ति देखिए, जो कहता है कि हम पहाड़ तोड़कर के नहर लाएँगे और शीरी से हमारा विवाह होगा।"

अध्यात्म का यही सही स्वरूप है, जिसे संकल्प-शक्ति कहते हैं। संकल्पशक्ति का उसमें उदय हो चुका और सैकड़ों, हजारों लोग उसके सहायक हो गए और पहाड़ों को तोड़ते हुए चले गए और नहर को लाने में सफल हो गया। कौन सफल हो गया? वह फरहाद नहीं था, जो सफल हुआ, वरन उसके अंदर जो संकल्पशक्ति बैठी हुई थी, वह सफल हुई। उस संकल्पशक्ति को आप भी याद करिए और उनको याद रखिए जो कि आपके गुरु हैं। उन्होंने सारी जिंदगी उस संकल्पशक्ति का निर्वाह किया है। चाहे किसी ने यह कहा कि गुरुजी हैं ही नहीं, किसी ने कहा कि गुरुजी को लकवा मार गया। किसी ने

कुछ कहा। जाने क्या-क्या कहा। उन्होंने एक की भी परवाह नहीं की। लक्ष्य अपना ऊँचा है, बकवास ऊँची नहीं है। बकवास तो जाने क्या-क्या होती है। लोग तो बकते ही रहते हैं और बकते रहेंगे। हाथी अपने रास्ते से जाता है और पीछे-पीछे कुत्ते भौं-भौं करते रहते हैं। करने दो, उससे क्या मतलब?

बेटे! उनका लक्ष्य ऊँचा है। उन्होंने जब जो संकल्प लिया, उसे पूरा किया। स्वतंत्रता संग्राम में उन्होंने संकल्प लिया, तो उन्हें कोई घरवाला भी नहीं रोक सका। वे चार साल जेल में रहे। घर में उन्हें बंद कर दिया गया और यह कह दिया गया कि माँ का अकेला बेटा है और यह जेल जाता फिर रहा है। इतने लोग गोलियों के निशाने बन रहे हैं, मेरा बेटा बन गया तो? आपको मालूम नहीं है कि वे सुबह से शाम तक बंद रहे। माँ से कहा—"ताई! माँ को ताई कहते थे। ताई अब तो खोल। अब टट्टी-पेशाब जाना है।" चप्पल भी छिपाकर रख लीं और धोती भी उठा करके रख ली। बस, अंडरवियर और बनियान पहने हुए थे। जनेऊ कान पर चढ़ाया और लोटा हाथ में लिया और कहाँ पहुँचे? आगरा छावनी, जहाँ कि कांग्रेस छावनी थी। वहाँ पहुँच गए। सारा घर देखता ही रह गया। घरवालों ने सारे गाँव में दिखवाया, पर वे तो रात में चलकर आगरा पहुँच गए। वे संकल्प के धनी हैं, जिन्होंने सारे किसानों का लगान माफ करा दिया। यह क्या है? संकल्प की शक्ति है। मन में जो संकल्प आया, जो प्रेरणा उनके मन में आई, बस, वो कर गुजरे। फिर उन्होंने किसी की नहीं मानी। जो विरोधी थे और जो रिश्तेदार थे, सब तरह के लोग थे, यही कहते थे कि उनमें सच्चाई है। वे संकल्प के धनी हैं।

हजार हाथियों का बल है संकल्प में

बेटे! संकल्प में बड़ी शक्ति होती है। कहते हैं कि संकल्प में हजार हाथियों का बल होता है। हाँ! मैं तो कहती हूँ कि हजार हाथियों का नहीं, लाख हाथियों का बल होता है संकल्प में। वे संकल्प के धनी थे, वही संकल्प आपके अंदर भी होना चाहिए। अब समय ज्यादा होता जा रहा है, अतः अब थोड़ी देर में मैं अपनी बात को समाप्त करती हूँ। एक बात रह गई और वह यह कि बेटे! शायद आपके मन में यह विचार आया होगा कि हमने अपनी घर-गृहस्थी के बारे में कुछ कहा ही नहीं। हमारा मन तो कहने का हुआ, लेकिन माताजी ने सुना नहीं। गुरुजी तक तो हमारी बात पहुँच नहीं पाई, लेकिन माताजी ने सुना नहीं। नहीं बेटे! यह लांछन हमारे ऊपर मत लगाना। बेटे! हम और गुरुजी आपके साथ हैं। हम चौबीसों घंटे आपके साथ रहे। आप सोते रहे और हम अपने बच्चों को दुलारते रहे। उनके सिर पर हाथ फेरते रहे, ठोढ़ियों में हाथ डालते रहे। बेटे! हम आपके साथ हैं। हिम्मत करके आप खड़े हो जाइए। आप अकेले नहीं हैं। चाहे आपने कुछ कहा नहीं है या लिखकर दिया नहीं है—वैसे तो प्रायः आप सभी ने लिखकर दे भी दिया है और उसे हमने पढ़ भी लिया है।

पुराने जमाने की बात है। एक राजा थे, जिनके तीन पुत्र थे। वे अपने पुत्रों को बहुत प्यार करते थे, लेकिन उनके भविष्य के लिए सदैव चिंतित रहते थे। एक दिन राजा अपने पुत्रों के साथ भ्रमण हेतु निकले। रास्ते में उन्हें एक महात्मा मिले। राजा ने उन्हें नमस्कार करके अपने पुत्रों के भविष्य के बारे में पूछा। महात्मा ने राजपुत्रों को बुलाया और उन तीनों को दो-दो केले खाने को दिए। एक ने केले खाकर छिलके रास्ते में फेंक दिए। दूसरे ने केले खाकर छिलके कूड़ेदान में डाल दिए। तीसरे ने छिलके फेंकने के बजाय गाय को खिला दिए। महात्मा जी यह सब ध्यानपूर्वक देख रहे थे। उन्होंने राजा से कहा—"तुम्हारा पहला पुत्र उद्दंड है। दूसरा गुणी व समझदार है। तीसरा उदार व सज्जन है। हो सकता है वह समाजसेवी बने।" वस्तुतः आचरण से ही मनुष्य के स्वभाव का पता लगता है और उसी आधार पर उसका भविष्य निर्धारित होता है।

हम आपके भागीदार हैं

बेटे! अगर आप लिखकर नहीं भी दें और हम पढ़ें भी नहीं, तब भी आप उस धागे से बँधे हैं कि आपकी जो मन:स्थिति है, जो पारिवारिक स्थिति है, जो आपकी आर्थिक स्थिति हमसे छिपी नहीं है। हम तो बार-बार आपके मुख से कहलवाते हैं कि कह बेटा! तेरे घर में कैसे हैं ? तेरे बीबी-बच्चे कैसे हैं ? बाद में यह नहीं कहें कि माताजी ने पूछा नहीं। हम इसलिए पूछते हैं, ताकि आपका मन हलका हो जाए। बेटे! उलटी हो जाती है तो पेट हलका हो जाता है।

इसलिए आप अपने मन की सब बातें कह डालिए, ताकि आपका दिमाग और दिल हलका हो जाए और जिस उद्देश्य के लिए आप आए हैं, उस उद्देश्य की पूर्ति आप कर लें। बगैर किसी विचार के आप यह मानकर चलना कि हम आपकी हर समस्या में भागीदार हैं। आपने भागीदारी की दीक्षा ली है कि नहीं ली है ? अगर आपने भागीदारी की दीक्षा ली है, तो हम भी तो भागीदार हैं उसमें। जो भी आपकी कष्ट-कठिनाइयाँ हैं या आप बुरा करेंगे, तब भी बेटे हम भागीदार हैं। तब भी हमारी खोपड़ी पर आता है।

बेटे! आपको देखकर, आपके कर्मों को देख करके लोग कहेंगे कि अरे! ये देखो, यह किसका शिष्य है ? यह उनका शिष्य है। धिक्कार है इसके लिए। ऐसे महान व्यक्तित्व के साथ जुड़ा व्यक्ति तब भी नीचे-की-नीचे रह गया। अब भी इसके निकृष्ट कोटि के विचार हैं। गुरुजी के तो ऐसे विचार नहीं हैं, पर इसके देखो नालायक के। इसके ऐसे विचार हैं। तब भी बेटे हमारे ऊपर आता है।

हम आपको ऊँचा उठाते हैं, तब भी हमारा गौरव है, आपका नहीं है। आपका गौरव उसी में कि जिस तरीके से हम ऊँचे उठे हैं, उसी तरीके से हमारे बच्चे, हमारा प्रत्येक परिजन दिल और दिमाग की दृष्टि से ऊँचा उठे और संसार के लिए ऊँचा उठे। इसमें आपका गौरव है, हमारा गौरव है और हमारे मिशन का गौरव है और हम समझेंगे कि हमने आपकी सच्ची सेवा की है; क्योंकि बेटे सेवा के नाम पर हमारे ऊपर आएगा कि इन्होंने क्या सेवा की इन बच्चों की। हमको अपना बच्चा समझा, हमको अपना शिष्य समझा और हम वैसे-के-वैसे ही रह गए। हमको ऊँचा नहीं उठाया गया।

मनुष्य में देवत्व के उदय का संकल्प

बेटे! हमने ईमानदारी के साथ अपने प्रत्येक परिजन को ऊँचा उठाने में कोई कसर नहीं छोड़ी है और न छोड़ेंगे। यह बीड़ा हमने उठाया है। जो बात मैंने अभी आपसे कही थी कि गुरुजी ने एक ख्वाब देखा था—''इनसान में देवत्व के उदय का'' यह हमारा संकल्प है। अभी यह संकल्प पूरा नहीं हुआ है। ख्वाब तो पूरा हो गया है, लेकिन संकल्प के पूरा होने में अभी बहुत देर है। उस संकल्प को पूरा करने के लिए आपको तैयारी करनी है। रही आपके घर-गृहस्थी की बात, जो आप नहीं कह पाए, वह पूरी हमको मालूम ही है।

यह बात अलग है कि कोई आपके ऐसे भोग हैं, जिनमें हम आपकी मदद नहीं कर सकते। यह तो भगवान राम भी नहीं कर सके। जिनको भगवान कहते हैं, वे भी अपनी माँ के वैधव्य को नहीं मिटा सके; क्योंकि राजा दशरथ जी को श्रवण कुमार का शाप लगा हुआ था और उनकी माँ विधवा हो गईं और बेटे के वियोग में विलाप करते हुए उनका देहावसान हो गया।

भगवान श्रीकृष्ण अपनी बहन सुभद्रा के बेटे को नहीं बचा सके। सुभद्रा ने कहा था—''भाई! तुम्हें सब भगवान कहते हैं और तुम भगवान हो, तो तुम्हारे होते हुए तुम्हारे अकेले भानजे अभिमन्यु की मौत हो गई। उसका वध हो गया और तुम देखते रहे। तुम कैसे भगवान हो और तुम कैसे भाई हो ? मैं अकेली तुम्हारी बहन हूँ। तो उन्होंने यह जवाब दिया—''बहन! कर्मबंधन से भगवान भी अलग नहीं है। मैंने भी जो पूर्वजन्म में बालि को मारा था, वह तीर अभी सुरक्षित रखा है और मेरे भी पैर में सेप्टिक होगा और मैं भी मारा जाऊँगा, तो फिर तेरे बेटे को कैसे बचाता ?''

बेटे! यह बात अलग है कि जिनके प्रारब्धजन्म ऐसे ही जटिल हैं, जो नहीं हट सकते, लेकिन कैसी भी आपकी संकट की घड़ी क्यों न हो, चाहे आपका वह संकट न टला हो, लेकिन उसमें आप दु:खी हैं, आप द्रवित हैं, उसमें हम शामिल हैं। उसमें हम आपको हिम्मत दे रहे होंगे, आपको साहस दे रहे होंगे। बेटे! संकट का सामना सबने किया है, तू कैसे दु:खी हो रहा है। आने दे देखा जाएगा। ऐसे ही रोता रहेगा क्या ? ऐसे ही कर्म को, ऐसे ही तकदीर को पकड़े बैठा रहेगा ? नहीं, जो तेरे साथ में फल और कर्त्तव्य बँधे हैं, उनका तू सामना कर। उसका तू पालन कर। कृष्ण ने तो

केवल अकेले अर्जुन को ज्ञान दिया था और हम बेटे लाखों को देंगे।

हम कृष्ण तो नहीं बने हैं, भगवान राम भी नहीं बने हैं। भगवान-तो-भगवान ही होता है और इनसान इनसान ही होता है, लेकिन जिस इनसान में भगवान के गुण होते हैं, वह भगवान से कम भी नहीं होता, यह हम भी कहते हैं। गुरुजी तो नहीं कहते, लेकिन हम कहते हैं। इस बात को मैं कहती हूँ कि जिसके अंदर भगवान के वो गुण विद्यमान हैं, वह भगवान से कम कहाँ है ? भगवान से कम है तो फिर बुद्ध को भगवान क्यों कहा है ? राम को भगवान क्यों कहते हैं ? कृष्ण को भगवान क्यों कहते हैं ?

बेटे! इसलिए कहते हैं कि अपने स्वार्थ को त्याग करके वे परमार्थ में लग गए। सारा-का-सारा विश्व उनका अपना था। यही भगवान के गुण हैं, जो कूट-कूटकर भरे हुए हैं। बेटे! हम आपके दु:ख में, कष्ट में सहायक हैं। सुख में हम सहायक हैं कि नहीं, इसे छोड़ दो। उसमें तो शायद सहायक नहीं होंगे; क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति सुख में भूल जाता है। भगवान को भूल जाता है, गुरुजी को भूल जाता है, सब को भूल जाता है। दु:ख में सब याद आते हैं। दु:ख में सब मैया-मैया ही करते हैं। करते हैं कि नहीं करते ? जरा दरद होने दे, फिर मुँह पर होगा—अरे मैया मर गया, मर गया। यही करते हैं न ? और सुख में जब सब ठीक होता है, तब न कोई मैया याद आती है और न कोई बाप याद आता है और न भगवान याद आता है।

भगवान तो परे गया, जिसने जन्म दिया है, वही याद नहीं आता। सुख में रहने दीजिए, पर दु:ख में हम जरूर शरीक रहेंगे। बेटे! हम कबूतर और कबूतरी नहीं हैं, जो अग्नि में प्राण देंगे, लेकिन हम आपका साथ देंगे। जीवनपर्यंत तक देंगे और हम नहीं भी रहेंगे, तो जहाँ कहीं भी हमारी जीवात्मा रहेगी, वह आपके साथ जुड़ी रहेगी। अपने ऊपर आप छाया के तरीके से अनुभव कर रहे होंगे कि हम किसी पेड़ के नीचे बैठे हैं। इस छाया के नीचे बैठे हैं। हमको शीतलता मिल रही है। हमको संतोष मिल रहा है। हमको प्रेरणा मिल रही है।

बेटे! यह सब आपको हरदम मिलती रहेगी, क्योंकि हमने आपकी उँगली पकड़ी है और आपने हमारे आँचल को पकड़ा है। आप हमारे बच्चे हैं, हम आपके माता और पिता हैं। पिता आपके लिए साधन जुटाएँगे और माँ आपके लिए ममता जुटाती रहेगी। आपको प्यार देती रहेगी और आपकी पीठ को थपथपाती रहेगी। पिता आपको ज्ञान देगा, आपको आत्मबल देगा, आपको साहस देगा और माँ आपको मनोबल देगी। बेटे! जिस रास्ते पर आपका बूढ़ा पिता, आपका बूढ़ा गुरु चल रहा है, उस रास्ते पर चलने के लिए आपकी माँ आपको प्यार से कहेगी, आपको धमकाकर कहेगी। जो भी युक्ति होगी, जो भी हथकंडे होंगे, वह लागू करेगी और कहेगी कि बेटे! चल, चल। तुझे चैन से नहीं बैठने देंगे। इसे चाहे आप हमारा संकल्प कहिए, चाहे यह कहिए कि कोई माँ-बाप क्रूर होते हैं न, जब देखो दबाते ही चले जाते हैं। जब देखो डाँटते ही चले जाते हैं। बेटे! क्रूरता तो नहीं है, लेकिन हम हर व्यक्ति को ललकारते हैं और झकझोर करके कहते हैं कि बेटा क्या करता है ? क्या कायर की तरह से जिंदगी जिएगा ?

बेटे! आज सारा विश्व यह देख रहा है कि कोई है क्या, हमको शीतलता देने वाला ? कोई नहीं है, केवल आपका मिशन है, जो शीतलता दे सकता है, जिसके कि आप अनुयायी हैं। जिससे कि आप जुड़े हुए हैं, जिसके आप हैं और मैं हूँ। इन लड़कियों से भी कहूँगी कि बेटियो ? अपनी खुदगर्जी के लिए मत रहना। पति की सेवा भी करो, बच्चों की सेवा भी करो, लेकिन इस मोह-जंजाल में उलझकर मत रह जाना। आपसे भी यही कह रही हूँ कि आपको घर-घर जाना होगा। भगवान बुद्ध के जमाने में जो भिक्षु और भिक्षुणी थे, अलख जगाने के लिए वे घर-घर जाते थे। आपको भी मैं कहूँगी कि आपको घर-घर जाना है। संभव है कि आपका क्षेत्र सीमित हो। आप जहाँ के निवासी हैं, जहाँ आपका मुहल्ला है, जहाँ आपका परिचय क्षेत्र है, इससे जरा आगे तक आपको जाना है। आप छोटी जगह में हैं तो आप एक काम कीजिए कि दो से पाँच बजे तक का जो फालतू समय बचता है, उसमें आप लोगों का जन्मदिन मनाइए। बाल संस्कार जो हैं—मुंडन संस्कार से लेकर विद्यारंभ संस्कार तक कराइए।

बेटे! आप लोग इनका सहयोग कीजिए। मैं तो कहती हूँ कि घर-गृहस्थी के काम में भी सहयोग कीजिए। घर के काम में हाथ नहीं बँटा सकते, तो मनोबल बढ़ाने में तो हाथ बँटा ही सकते हैं। हाथ बँटाइए, फिर देखिए कि आपकी सहयोगी होती हैं कि नहीं। फिर आप यह कभी भी नहीं कहेंगे कि माताजी! क्या करें हमारी पत्नी हमारा सहयोग

नहीं करती। तो क्या करती है? जब जाते हैं, तभी लड़ाई शुरू कर देती है। धत् तेरे की, मुँह से लड़ती है कि तेरे साथ मार-पीट भी करती है। नहीं, मार-पीट तो नहीं करती है, तो फिर तू क्यों लांछन लगाता है उस पर? अपने हाई टेंपरेचर को डाउन कर उसका सहयोग करिए। जरा-सा काम होता है और सारा दिन खट्-खट् लगी रहती हैं। एक पति और एकाध बच्चा होता है और बस, सारा दिन उसी काम में लग जाता है। जाने क्या-क्या करती रहती हैं, मालूम नहीं।

आप हमारे सामने सौ आदमी बैठ जाइए। आपको एक घंटे में खाना न खिला दें तो फिर चाहे जो कहना। क्यों? बनाने का एक तरीका होता है, एक ढंग होता है। बनाने का तरीका न हो तो? आपको मालूम नहीं है। ऊपर बैठी-बैठी देखती रहती हूँ और सुबह तो जाती नहीं, शाम को जाती है। ऊपर से देखती रहती हूँ कि जाने कितने बैठे हैं और फिर मुझे नाराज होना पड़ता है। टेलीफोन पर कहना पड़ता है कि इतने जन बैठे हैं, कैसे इतनी देर लगा ली। अभी चूल्हे की लकड़ी नहीं जली है तो गैस तो जल ही रही है। गैस पर रख दो।

बेटे! कहने का मतलब यह है कि काम का एक फेर बना लो। काम का फेर हम बनाते नहीं, इसलिए हमारा सारा कार्य बिखरता हुआ चला जाता है। चाहे वह लड़के हों, चाहे लड़कियाँ हों, जब तक अपना टाइम टेबल नहीं बनाएँगे, तब तक वो व्यस्तता छाई रहेगी और आप कोई लोकोपयोगी काम नहीं कर सकेंगे। यह न आप कर सकेंगे और न आप कर सकेंगे। माताजी! हमको नौकरी से छुट्टी नहीं मिलती। हमको व्यापार से छुट्टी नहीं मिलती। बेटे! इस जन्म में तो नहीं मिलेगी, अगले जन्म में भी नहीं मिलेगी। जब देखो बहाना करता रहता है। बहाना मत करिए। उस समय में से ही आप निकालिए। देखिए, गुरुजी ने सारा संपादन किया, लेख लिखते हैं। उनका कितना व्यस्त जीवन है। बेटे! मैं समझती हूँ कि एक मिनट का हजारवाँ हिस्सा भी ऐसा नहीं होता, जो चिंतन से खाली हो। फिर भी अपने परिजनों से मिलते भी रहे हैं। पहले सुबह से शाम तक कितनी भीड़ लगती थी। उसको निपटाते भी रहते थे और अन्य कार्यों को भी करते रहते थे। लेखन भी करते थे। सारे-का-सारा समय लोग बाँधे बैठे रहते थे, फिर भी उनका समय कैसे बच जाता था, आपका क्यों नहीं बचता? आप भी बचा सकते हैं। आप उसमें से टाइम निकाल लीजिए।

युग की यही पुकार

बेटे! आप तो हमारे लिए इनसे कम नहीं हैं। लड़कों से कम लड़कियाँ नहीं हैं। लड़कियाँ मुझको बहुत प्यारी लगती हैं। बेटी अपने दु:ख में, कष्ट में आप हमेशा याद करना। हम आपके लिए हमेशा तैयार रहेंगे। आप जैसा कहेंगी, हम वैसा ही करेंगे। आपके आँसुओं को पोछेंगे। आपको अपने कलेजे से लगाएँगे। आप हमारी बेटियाँ हैं। आपके दु:ख-दरद को हम समझते हैं। वस्तुत: आप सताई हुई हैं, इसमें कोई शक नहीं है। उनको बुरा लगे-तो-लगे, लेकिन मेरी तो बेटियाँ हैं।

हमको और गुरुजी को बेटियाँ बहुत प्यारी लगती हैं। मैं यहाँ आई तो भी मैंने ढेरों लड़कियाँ बुला लीं। 26 कन्याएँ थीं, जिन्हें यहाँ पर रखा। सबने बी.ए., एम.ए. किए। सबके ब्याह-शादी किए और सब अपने-अपने घर गईं। तो आप उनसे कम हैं क्या? आप में तो शैलो की छबि देखती हूँ और ये मेरे जो लड़के बैठे हैं, बेटे! आपको मैं सतीश से ज्यादा मानती हूँ। आप सभी अध्यात्म से जुड़े हैं, सिद्धांतों से जुड़े हैं। आप भावनाओं से जुड़े हैं। आप प्रत्येक लड़के हमारे सतीश से ज्यादा हैं। आपके पुरुषार्थ को फिर एक बार मैं ललकारती हूँ और कहती हूँ कि बेटे, आपको हिम्मत के साथ शौर्य और साहस के साथ आपको खड़ा होना ही होगा और आप खड़ा होकर के ही रहेंगे।

बेटे! आज युग की पुकार है, आज मानवता की पुकार है और सारे संसार की पुकार है, जो आपकी ओर निहार रहा है। आपको पूरी हिम्मत और ताकत के साथ खड़ा होना ही होगा। यह मुझे पूरी-पूरी उम्मीद है और गुरुजी को यह आशा है कि अपने बच्चों को, अपने परिजनों को, अपने सहयोगियों को जो कार्य सौंपा है, वह पूरा हो करके रहेगा। हमारा कार्य हमेशा पूरा होता रहा है और आगे भी उसी प्रकार पूरा होता रहेगा। आपने जो यह समय निकाला और यहाँ तक आए और यहाँ कुछ कष्ट-कठिनाइयाँ भी सही होंगी। हमने देखा है आप यहाँ भीगते हुए आए हैं।

एक बार गुरुजी की खबर आई कि आज पानी पड़ रहा है। तुम मत जाना। मैंने कहा कि नहीं साहब! मैं जरूर जाऊँगी। ये बच्चे जब भीगते हुए आए हैं, यहाँ ऊपर तक आए हैं, तो मुझे जाने में क्या बात है? मैं जरूर जाऊँगी। बेटे! आपको यहाँ पर जरूर दिक्कतें हुई हैं। भोजन के समय दिक्कतें हुई हैं, आपके ठहरने संबंधी दिक्कतें हुई हैं।

प्रशिक्षण में भी आपको कठिनाइयाँ आई हैं, पर यह तो अपना घर है न, यह आपकी माँ का आँगन है, जिसमें आप एक महीने खेले हैं, अपनी सारी गृहस्थी को भूलते हुए। भूल गए? हाँ भूल गए। आपको यह महीना याद रहेगा, देखना बेटे, आपको वहाँ कई दिन तो नींद नहीं आएगी और गुरुजी, माताजी दिखाई देते रहेंगे, शांतिकुंज दिखता रहेगा आपको। न मानें तो देख लेना आप। हम आपके साथ हैं, आपके लिए हैं।

बेटे! हम आपके जीवन-रथ को इसी प्रकार सँभालते रहेंगे, जैसे भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन की बागडोर सँभाली थी। हम पति-पत्नी आपके जीवन के रथ के पहिया बनेंगे और आपके रथ को चलाएँगे, पर आप डगमगाना मत, अपने साहस को मत जाने देना। अपनी भावनाओं का परिष्कार करना। अपने सिद्धांतों का परिष्कार करना। जिस उद्देश्य के लिए आपको यहाँ बुलाया गया है और आपने समय खरच किया, आपने पैसा खरच किया, तो आपको यह सब सार्थक लग जाएगा। अब मुझे और ज्यादा कुछ नहीं कहना है। इन्हीं शब्दों के साथ हमारा और गुरुजी का ढेर आप सबको बहुत-बहुत प्यार और आशीर्वाद।

॥ ॐ शान्ति ॥

जापान का एक युवा तीरंदाज स्वयं को दुनिया का सबसे बड़ा धनुर्धर मानने लगा। वह जहाँ भी जाता, लोगों को मुकाबले की चुनौती देता और उस मुकाबले में उनको हराकर उनका खूब मजाक उड़ाता। एक बार उसने एक झेन गुरु बोकोशु को चुनौती दी। गुरु ने चुनौती स्वीकार ली।

युवक ने स्पर्धा प्रारंभ होते ही लक्ष्य के बीचोबीच निशाना लगाया और पहले ही तीर में उस लक्ष्य को बेध दिया। वह झेन गुरु से दंभपूर्वक बोला—"क्या आप इससे बेहतर कर सकते हैं?"

झेन गुरु मुस्कराए और उसे लेकर ऐसे स्थान पर गए, जहाँ दो पहाड़ियों को जोड़ने के लिए लकड़ी का कामचलाऊ पुल बना था। उस पर कदम रखते ही वह चरमराने लगा। बोकोशु ने उसे पुल पर अपने पीछे आने को कहा। बोकोशु ने पुल के बीच में पहुँचकर सामने दूर खड़े एक पेड़ के तने पर निशाना लगाया। इसके बाद उन्होंने युवक से निशाना लगाने को कहा, परंतु कई बार के प्रयास के बाद भी वह निशाना न लगा सका।

उसे निराशा में डूबा देखकर झेन गुरु ने कहा—"वत्स! तुमने निशाना लगाना तो सीख लिया, पर मन पर नियंत्रण करना नहीं सीखा, जो किसी भी परिस्थिति में शांत रहकर निशाना साध सके।" युवक को बात समझ में आ गई। उसने अब अहंकार छोड़कर मन को साधने का प्रयास आरंभ कर दिया।

गणमान्य व्यक्तित्वों की उपस्थिति से गौरवान्वित हुआ विश्वविद्यालय

वर्तमान समय में मानवता अपने उद्देश्य को भूलकर एक ऐसे प्रवाह का अंग बन गई प्रतीत होती है, जहाँ पर शैक्षणिक संस्थानों का उद्देश्य भी विद्यार्थियों को मात्र एक पैसा प्रदान करने वाले प्रोडक्ट में बदल देना है। बाह्य जीवन की आकर्षक एवं लुभावनी दौड़ कब व्यक्तित्व को अंधकार के गर्त में डाल देती है—इसका पता भी आज की परिस्थितियों में चल नहीं पाता।

ऐसे में आवश्यक हो गया है कि मनुष्य के व्यक्तित्व के नवनिर्माण हेतु सार्थक एवं सकारात्मक प्रयासों को अंजाम दिया जाए। मनुष्य का भावनात्मक नवनिर्माण—परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त गायत्री परिवार का वह उद्देश्य था, जिसकी पूर्ति हेतु आज देव संस्कृति विश्वविद्यालय कृतसंकल्प नजर आता है।

निश्चित रूप से देव संस्कृति विश्वविद्यालय के इन प्रभावकारी प्रयासों की सुगंध विश्व के कोने-कोने तक पहुँची है और इसी कारण से अनेकों गणमान्य व्यक्तित्व सदैव यहाँ आने के लिए उत्साहित एवं लालायित नजर आते हैं।

इसी क्रम में शांतिकुंज के स्वर्ण जयंती वर्ष के पावन अवसर पर भारत के माननीय राष्ट्रपति, आदरणीय श्री रामनाथ कोविंद जी का सपरिवार आगमन देव संस्कृति विश्वविद्यालय के दिव्य प्रांगण में हुआ। देव संस्कृति विश्वविद्यालय आगमन पर उनका स्वागत विश्वविद्यालय के कुलपति, प्रतिकुलपति एवं कुलसचिव जी द्वारा किया गया।

इसके उपरांत उन्होंने मृत्युंजय सभागार का प्रेक्षण किया तथा वहाँ पर उत्तराखंड के उच्च शिक्षा मंत्री, महामहिम राज्यपाल एवं विश्वविद्यालय के प्रमुख पदाधिकारियों एवं विभागाध्यक्षों के साथ सामूहिक फोटो खिंचवाई। इसी क्रम में श्रद्धेय कुलाधिपति जी द्वारा उन्हें समस्त गायत्री परिवार की ओर से गायत्री माँ की प्रतिमा का स्मृति चिह्न, गंगाजल एवं परमपूज्य गुरुदेव द्वारा रचित युगसाहित्य भेंटस्वरूप प्रदान किया गया। इसके बाद उन्होंने रुद्राक्ष के पौधे का रोपण किया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के भ्रमण के क्रम में भारत के माननीय राष्ट्रपति प्रज्ञेश्वर महादेव के मंदिर पहुँचे, जहाँ उन्होंने रुद्राभिषेक के साथ पूजन-अर्चन का क्रम संपन्न किया। इसके उपरांत वे देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित एशिया के प्रथम व एकमात्र बाल्टिक शिक्षा एवं संस्कृति केंद्र गए।

उन्होंने इस केंद्र की भूरि-भूरि प्रशंसा की एवं इस केंद्र के माध्यम से बाल्टिक देशों के साथ संबंधों को मधुर एवं मजबूत बनाने के लिए किए जा रहे प्रयासों एवं अनुसंधानों की सराहना की। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के भ्रमण के उपरांत माननीय राष्ट्रपति शांतिकुंज गए जहाँ उन्होंने परमपूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माताजी के कक्ष के दर्शन किए तथा अखंड दीपक के सम्मुख विशिष्ट प्रार्थना की।

गणमान्य अतिथियों के देव संस्कृति विश्वविद्यालय पहुँचने के इस क्रम में मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान जी का आगमन भी हुआ। उनके विश्वविद्यालय पधारने पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी द्वारा गायत्री माता का चित्र, यज्ञ किट एवं परमपूज्य गुरुदेव द्वारा रचित साहित्य उन्हें भेंट किया गया।

अपने देव संस्कृति विश्वविद्यालय प्रवास के क्रम में माननीय मुख्यमंत्री जी ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय स्थित एशिया के प्रथम एवं एकमात्र बाल्टिक केंद्र का अवलोकन किया तथा साथ ही यहाँ चल रही गतिविधियों की विशेष रूप से प्रशंसा की। इसी क्रम में उन्होंने प्रज्ञेश्वर महादेव के दर्शन किए तथा वहाँ रुद्राभिषेक कर सभी के मंगलमय जीवन के लिए भगवान महाकाल से प्रार्थना की। इसी के साथ उन्होंने उत्तराखंड के मुख्यमंत्री श्री पुष्कर सिंह धामी जी के साथ मौलश्री के एक पौधे का रोपण देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में किया।

इसके उपरांत शांतिकुंज स्वर्ण जयंती वर्ष व्याख्यानमाला की शृंखला में 'परमपूज्य गुरुदेव का जीवन दर्शन' विषय पर उनका विशिष्ट उद्बोधन हुआ, जिसमें उन्होंने यह कहा—"आज वे जिस भी लक्ष्य को प्राप्त कर पाए हैं या जो भी

श्रेष्ठ कर पा रहे हैं, उसकी प्रेरणा उन्हें परमपूज्य गुरुदेव से ही मिलती है। अपने भावनात्मक उद्‌बोधन में उन्होंने सभी को यह बताया कि किस तरह से पूज्य गुरुदेव से हुई उनकी एक मुलाकात ने उनके जीवन की दिशा को सदा के लिए बदल दिया।''

गणमान्य अतिथियों के आगमन के अतिरिक्त देव संस्कृति विश्वविद्यालय वैश्विक मंच पर अपनी विशिष्ट उपस्थिति भी दरसाता रहा। इस क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय का एक महत्त्वपूर्ण अनुबंध वेस्टइंडीज के प्रमुख विश्वविद्यालय यूनिवर्सिटी ऑफ वेस्टइंडीज के साथ हुआ। इस अनुबंध का उद्देश्य दोनों संस्थानों के मध्य, शोध एवं शैक्षिक गतिविधियों को बढ़ावा देना है।

इसी के साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा एक ऐसा ही अनुबंध इंडोनेशिया के गाँधीपुरी आश्रम के साथ किया गया। यह आश्रम वहाँ के प्रख्यात समाजसेवी इंद्र उड़ायन जी के द्वारा स्थापित है। भारत सरकार के द्वारा पद्‌मश्री की उपाधि से अलंकृत इंद्र उड़ायन जी इस अनुबंध पर हस्ताक्षर करने के लिए विशेष रूप से भारत पधारे एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति के साथ इस अनुबंध पर हस्ताक्षर करे।

वैश्विक मंचों पर भागीदारी करने के क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि तब अर्जित की गई, जब देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी को बहरीन में वहाँ के किंग हमाद सेंटर द्वारा दो दिवसीय अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में प्रमुख वक्ता के रूप में आमंत्रित किया गया।

इस अवसर पर भारत का प्रतिनिधित्व करते हुए उन्होंने 'इग्नोरेंस इज दि एनिमी ऑफ पीस' विषय पर अपना उद्‌बोधन दिया। इस कार्यक्रम में बहरीन के प्रधानमंत्री, उपप्रधानमंत्री—शेख खलीफा बिन खलीफा अल खलीफा, बोस्निया के पूर्व राष्ट्रपति, क्रोएशिया की पूर्व राष्ट्रपति, सर्बिया के विदेश सचिव एवं इंग्लैंड की डचेस उपस्थित रहे।

अपने उद्‌बोधन में उन्होंने कहा कि परमपूज्य गुरुदेव ने एकता, समता, शुचिता, ममता जेसे सूत्रों के माध्यम से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के चिंतन को ही प्राथमिकता प्रदान की है और उसी मार्ग पर चलकर विश्वमानवता का कल्याण संभव है। इसके साथ ही उन्होंने यज्ञीय जीवन दर्शन की अवधारणा को भी उपस्थित प्रतिभागियों को बताया। इस तरह से देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि अर्जित की गई। ❑

सत्यसेन नामक राजा अत्यंत प्रतापी व वीर थे। उनका संकल्प था कि संसार में जो सर्वोच्च धार्मिक एवं उच्चस्तर का पंथ होगा, वे उसे ही स्वीकार करेंगे। इसके लिए विभिन्न पंथों के लोगों को बुलाकर जानकारी लेनी प्रारंभ कर दी। सभी पंथानुयायी अपने-अपने पंथ को सर्वश्रेष्ठ बताते। इससे राजा संशय में पड़ गया। वह अपनी शंका के समाधान हेतु महात्मा के पास पहुँचा। राजा की बात सुनकर महात्मा राजा को एक नदी के पास ले गए और बोले—''उस पार चलकर मैं आपकी शंका का समाधान करूँगा।'' राजा ने कहा—''ठीक है। नाव में बैठकर चलते हैं।'' अब संत वहाँ खड़ी हर नाव में मीन-मेख निकाल देते। कुछ देर बाद राजा खीझते हुए बोला—''हमें नदी के उस पार ही तो जाना है। कोई भी ठीक-ठाक नाव हमें उस पार पहुँचा देगी।'' अब संत बोले—''मैं भी तो तुम्हें यही बात बताना चाहता हूँ। जब कोई भी पंथ तुम्हें संसार के पार ले जा सकता है, तब आप अपना अमूल्य समय संशय में क्यों नष्ट कर रहे हैं?''

जनजाग्रति के केंद्र प्रज्ञा संस्थान

स्वामी विवेकानंद ने अपने उद्बोधनों के क्रम में कहा था कि हर देश व राष्ट्र की अपनी एक आत्मा होती है और जब वह राष्ट्र या समुदाय उस आंतरिक चेतना के प्रसार व विस्तार के लिए कार्य करते हैं तो वह समुदाय स्वयं को परिपूर्ण एवं पुष्ट पाता है। भारत के लिए उन्होंने यह कहा कि भारत की आत्मा भारत के धार्मिक, आस्थागत आधार में निवास करती है। वे बोले कि यदि कोई अमेरिका में जाकर राह चलते व्यक्ति से प्रश्न करे कि वह किस धर्म को मानता है तो कई ऐसे मिलेंगे, जिन्हें किसी धर्म में विश्वास न हो, पर भारत में लगभग हर व्यक्ति की आस्था का केंद्र कोई-न-कोई शक्ति अवश्य है।

स्वामी विवेकानंद द्वारा कही गई यह बात अक्षरशः सत्य है; क्योंकि आज भी भारत में हम उस आस्थागत चेतना के प्रवाह को स्पष्ट रूप से अनुभव कर सकते हैं। सन् 2001 में हुई जनगणना के मुताबिक भारत में 20 लाख के करीब मंदिर थे। निश्चित रूप से यह संख्या आज और भी बढ़ गई होगी। ऐसे ही अनेकों प्रज्ञा संस्थान भी भारत के कोने-कोने में फैले हुए हैं। आज जब उनमें से अनेक की स्थापना के 40 से अधिक वर्ष होने को आए हैं तो शांतिकुंज की स्थापना की इस 51वीं वर्षगाँठ की वेला में यह चिंतन करना आवश्यक हो जाता है कि उसकी स्थापना के उद्देश्यों पर सामयिक संदर्भ में एक दृष्टि डाल ली जाए।

परमपूज्य गुरुदेव द्वारा मनुष्य का भावनात्मक नव-निर्माण करने के उद्देश्य से एवं धर्मतंत्र के माध्यम से लोक-शिक्षण देने के उद्देश्य से इन प्रज्ञा संस्थानों की स्थापना के क्रम को सन् 1979 की वसंत पंचमी के बाद आरंभ किया गया था। उस वर्ष युग निर्माण योजना को प्रारंभ हुए 25 वर्ष हो चुके थे और इस दैवी योजना के रजत जयंती वर्ष में नवचेतना के प्रतिपादन के लिए ही नहीं, बल्कि मनुष्य मात्र के अंतराल में सद्भावों को जगाने के लिए सामयिक आवश्यकता को महसूस करते हुए पहले तो 24 और फिर बाद में 2400 स्थलों पर गायत्री शक्तिपीठ, गायत्री प्रज्ञापीठ जैसे प्रज्ञा संस्थानों को स्थापित करने का निर्णय किया गया।

उद्देश्य इस सब के पीछे एक ही था कि गायत्री का तत्त्वज्ञान, गायत्री मंत्र की शिक्षाएँ तथा उनके माध्यम से मानवीय चेतना के परिष्कार, युग के निर्माण एवं व्यक्तित्व के परिशोधन का कार्य संपन्न किया जा सके। परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी द्वारा पूर्व में चलाए जा चुके अन्य सारे प्रकल्प एवं आयोजन भी लाखों-करोड़ों परिशोधित व्यक्तित्वों के रूप में अपना प्रभाव पहले ही दिखा रहे थे। प्राण प्रत्यावर्तन, संजीवनी साधना सत्रों के माध्यम से अपने जीवन को नई दिशा देने वाले अनेकों कार्यकर्त्ताओं का समूह उनके साथ पहले से ही खड़ा था। गायत्री की चेतना को विस्तार प्रदान करने के लिए आरंभ किया गया प्रव्रज्या अभियान भी निश्चित रूप से तीव्रता पा चुका था।

परमपूज्य गुरुदेव का इन गायत्री तीर्थों की स्थापना के पीछे का उद्देश्य यह था कि इनके माध्यम से जनमानस की जाग्रति का क्रम संपन्न हो सके। वर्षों पहले आदि शंकराचार्य द्वारा भारत का आध्यात्मिक मंथन कुछ इसी तरह से किया गया था और उन्होंने तीर्थ जागरण के माध्यम से एक नवीन ज्ञानचेतना का आलोक भारत के कोने-कोने में प्रवाहित व प्रसारित कर दिया था। कुछ ऐसी ही सोच एवं कुछ ऐसी ही भावना परमपूज्य गुरुदेव के अंतस् में भी थी और इसीलिए उन्होंने लिखा कि हमारी कभी यह इच्छा नहीं रही कि विशाल मंदिरों की संख्या अनावश्यक रूप से बढ़ाई जाए। स्थापनाएँ जहाँ हों वे गायत्री तीर्थ के रूप में विनिर्मित हों, जहाँ देव प्रतिष्ठा से लेकर धर्मधारणा को सुस्थिर एवं प्रगतिशील बनाने की रचनात्मक गतिविधियाँ चलें। यदि यह पहले से स्थापित देवालयों में भी चल पड़ें तो इसे एक नई स्थापना-नवजागरण मानना चाहिए।

इससे ज्यादा क्रांतिकारी व सामयिक सोच और क्या हो सकती थी कि जहाँ पर साधन हों, भावनाएँ हों, तो वहाँ नवीन शक्तिपीठ बनाया जाए, पर उनके अभाव में यदि

पुराने देवालयों का ही जीर्णोद्धार कर दिया जाए एवं उन्हीं में चेतना का संचार कर दिया जाए तो कितनी सरलता से इस कार्य को कर पाना संभव है, साथ ही उस उद्देश्य के साथ न्याय भी संभव है, जिस उद्देश्य को लेकर गायत्री परिवार की स्थापना की गई थी।

अवतारी पुरुषों के संकल्प तुरंत ही मूर्तरूप में आ जाते हैं। परमपूज्य गुरुदेव ने सन् 1979 में इनके विषय में बोलना आरंभ किया और देखते-देखते यह संख्या सैकड़ों में पहुँचने लगी। भगवान के मत्स्यावतार की ही तरह से परमपूज्य गुरुदेव के संकल्प ने भी विस्तार लेना आरंभ कर दिया। अनेकों प्रज्ञा संस्थानों की स्थापना के पीछे के कुछ संस्मरण तो ऐसे हैं कि सुनने वाला दाँतों तले उँगली दबा ले। अनेक कार्यकर्त्ता जो इन शक्तिपीठों की स्थापना का माध्यम एवं निमित्त बने, वे ऐसे थे कि अपने स्वयं के घर के निर्माण के लिए उनके पास अपेक्षित धनराशि न थी, न जाने कैसे व कहाँ से उनके पास लाखों रुपये जुटते गए और ये दिव्य निर्माण संभव होते चले गए।

प्रत्येक प्रज्ञा संस्थान में आस्था के केंद्र के रूप में माँ गायत्री की प्रतिमा की स्थापना, साहित्य प्रचार केंद्र, सत्संग हॉल, परिव्राजक निवास कक्ष आदि बनाने को कहा गया। देखते-देखते यह ईश्वरीय प्रयास गति पकड़ता गया और हजारों प्रज्ञा संस्थान विनिर्मित हो गए। इन प्रज्ञा संस्थानों के माध्यम से ऐसे प्राणवान, निष्ठावान कार्यकर्त्ता उभरकर, निखरकर आए कि वे अनेकों के जीवन को पूर्णरूपेण बदलने का कारण बनते दिखाई पड़े।

जब इन प्रज्ञा संस्थानों के शिलान्यास व उद्घाटन के क्रम हेतु परमपूज्य गुरुदेव स्वयं भारत प्रवास पर निकले तो वे सबको स्पष्ट करते गए कि ये जनजागरण का केंद्र हैं, मात्र मंदिर नहीं। साथ ही वे सबको सचेत करते चले कि लोकैषणाग्रस्त व्यक्ति इन केंद्रों, संस्थानों से कभी न जुड़ें। संकेत स्पष्ट था कि जन-जन के परिश्रम से संचित धनराशि से विनिर्मित ज्ञान विस्तार को समर्पित प्रज्ञा केंद्र यदि उनके लिए निहित उद्देश्यों को पूर्ण न कर सके तो महाकाल की शक्ति सबको झकझोरकर एक नए तंत्र को ला खड़ा करेगी, ताकि वो कार्य किए जा सकें, जिनको पूर्ण करने हेतु यह दैवी संकल्प उभरकर आया है।

प्रज्ञा संस्थानों में स्थापित माँ गायत्री की प्रतिमा का उद्देश्य आस्थावानों के अंतस् में आस्था का जागरण करना, प्रतिभाओं के दर्शन के माध्यम से आगंतुकों को ऋतंभरा प्रज्ञा का तत्त्वदर्शन समझाना था तो वहीं पर उपस्थित यज्ञशाला के माध्यम से उनको यज्ञ के ज्ञान-विज्ञान से परिचित कराना भी था। युगसंगीत प्रशिक्षण के माध्यम से जनचेतना को प्रेरित करना तथा संस्कार-परंपरा को जाग्रत करने के द्वारा इन संस्थानों का लक्ष्य जनमानस का परिचय प्रगतिशील अध्यात्म से कराना था। प्रज्ञामंडलों, महिलामंडलों, युवामंडलों की स्थापना से लेकर बाल संस्कारशालाओं की स्थापना इसी क्रम का हिस्सा था। इसी के साथ अनेकों रचनात्मक कार्यक्रमों का संचालन प्रज्ञा संस्थानों का मुख्य उद्देश्य था।

आज के सामयिक संदर्भ में यह आवश्यक है कि प्रज्ञा संस्थानों को जिस उद्देश्य को लेकर स्थापित किया गया था, वह अक्षुण्ण रहे। परमपूज्य गुरुदेव ने इनकी स्थापना के साथ एक महत्त्वपूर्ण चिंतन यह दिया था कि ये मंदिर नहीं, जनजाग्रति के केंद्र हैं और आज इनके द्वारा इसी भूमिका के निर्वहन का समय आ गया है। ❑

हमारा प्रत्येक विचार हमारे पथ में काँटे या पुष्प बिखेरता है। हम जैसा चाहें, अपने विचारों की शक्ति द्वारा बन सकते हैं। कोई भी विस्फोटक पदार्थ मनुष्य के प्रचंड विचारों से बढ़कर शक्ति नहीं रखता है। कोई भी संबंधी, देवी, देवता हमारी इतनी सहायता नहीं कर सकता, जितने हमारे विचार। विचारों द्वारा ही हम शक्ति का केंद्र मन से निकालते हैं और अपने सबसे बड़े मित्र बन सकते हैं। अतः जब तक हम अपने विचारों को निम्न, निकृष्ट, खोटी वस्तुओं से हटाकर ऊँचे विषयों में नहीं लगाते, तब तक हमारे विचार परमात्मा की असीम शक्ति से सामंजस्य प्राप्त नहीं करते। —*परमपूज्य गुरुदेव*

भक्ति में है शक्ति अपरिमित, भगवन् भी मिल जाते हैं।
'रामकृष्ण हे परमहंस', भक्ति का मार्ग दिखाते हैं॥

माँ काली के परम भक्त थे, ईश अंश अवतारी थे।
प्रेम, दया, स्नेहिल ममता, करुणा के सजल पुजारी थे॥
हरिदर्शन को आकुल-व्याकुल, ईश्वर को पा जाते हैं।
'रामकृष्ण हे परमहंस', भक्ति का मार्ग दिखाते हैं॥

भक्ति-भाव से रामकृष्ण ने, काली को साकार किया।
भावशून्य हृदयों में गुरु ने, करुणा का संचार किया॥
हृदय पवित्र, मन निर्मल जिनका, ईश दरस कर पाते हैं।
'रामकृष्ण हे परमहंस', भक्ति का मार्ग दिखाते हैं॥

नारायण दरिद्र जन को भी, भक्ति-मार्ग से जोड़ा था।
जाति-पाँति और ऊँच-नीच का, बंधन उनने तोड़ा था॥
सेवा-पथ अपनाकर ही हम, ईश्वरमय हो जाते हैं।
'रामकृष्ण हे परमहंस', भक्ति का मार्ग दिखाते हैं॥

विद्या और अविद्या माया, का विस्तार बताया था।
मातु शारदा संग तपोवन जीकर स्वयं सिखाया था॥
कंचन-कामिनी की बाधा से, ईश्वर मिल ना पाते हैं।
'रामकृष्ण हे परमहंस', भक्ति का मार्ग दिखाते हैं॥

इंद्रियनिग्रह करके साधक, योगी पूर्ण कहाते हैं।
धर्म सभी सच्चे होते बस, मार्ग भिन्न हो जाते हैं॥
ज्ञान, भक्ति, वैराग्य साधकर, बंधन सब कट जाते हैं।
'रामकृष्ण हे परमहंस', भक्ति का मार्ग दिखाते हैं॥

— उमेश यादव
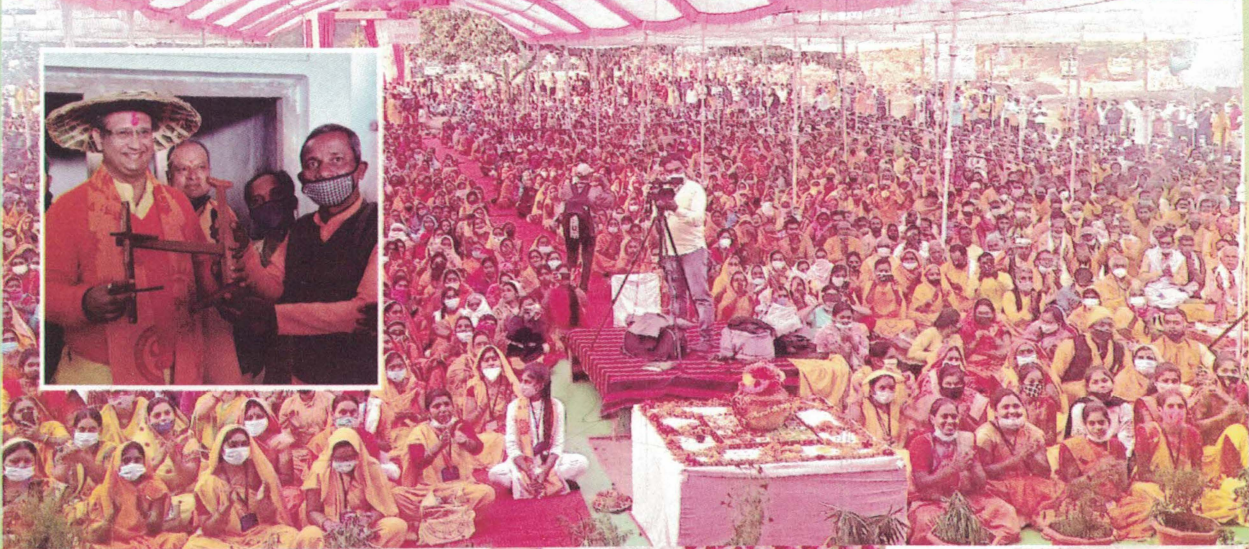
प्रतिकुलपति देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा छत्तीसगढ़ प्रांत में सघन प्रवास, विभिन्न कार्यक्रमों में भागीदारी एवं गायत्री परिजनों से सघन संपर्क – मार्गदर्शन

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-2-2022
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

युगतीर्थ शांतिकुंज-हरिद्वार में आयोजित प्रांतीय युवा संगोष्ठि
गुजरात, उत्तर प्रदेश एवं बिहार प्रांत के युवा परिजनों से परामर्श एवं भावी योजनाओं संबंधी मार्गदर्शन

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूर भाष–0565-2403940, 2402574, 2412272, 2412273 मो बा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org